कुरुक्षेत्र

जनवरी 1989

मूल्य दो रुपये

पशुधन विकास

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और अल्परोजगार से निपटने के लिए पशुपालन सबसे प्रभावशाली साधन है। इससे न केवल मौसमी रोजगार और अल्पकालिक रोजगार मिलता है बल्कि इससे पूर्ण रोजगार भी उपलब्ध होता है।

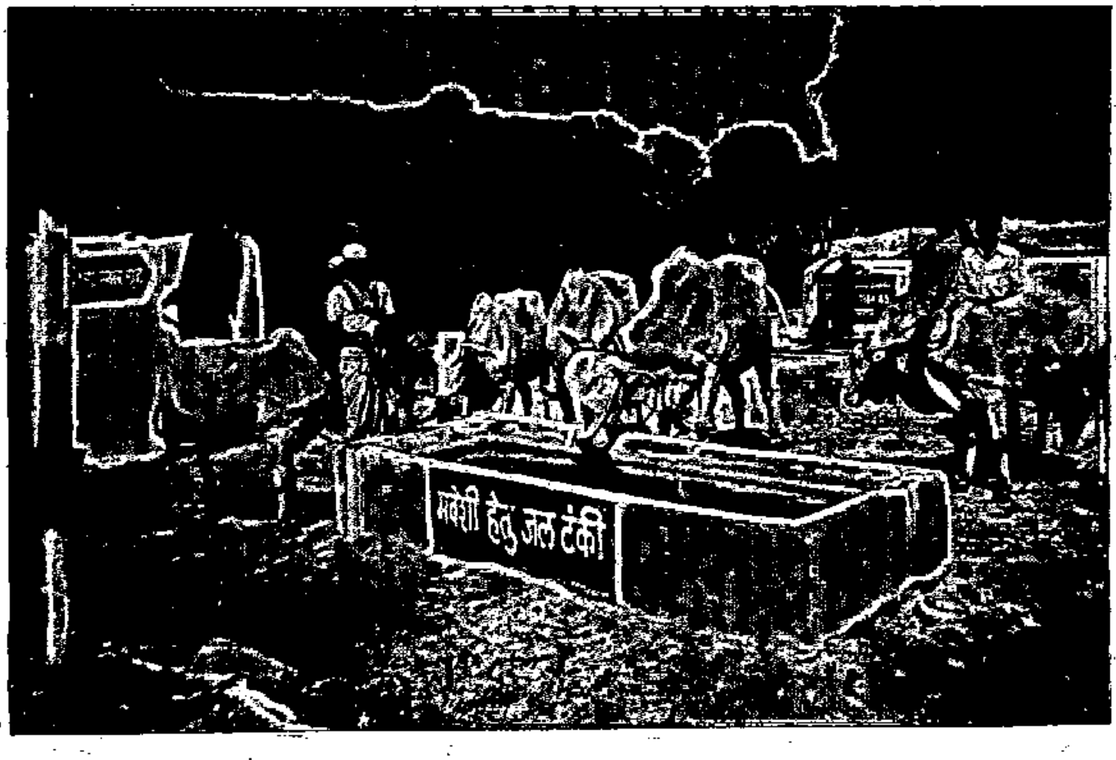

वर्ष-34 अंक 3 पौष – माघ, शक 1910

कार्यवाहक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए । अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है ।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए ।

सहायक निदेशक : राम स्वरूप मुंजाल (उत्पादन)

आवरण पृष्ठ : एम.एम. मलिक

चित्र : फोटो प्रभाग एवं ग्रामीण विकास विभाग से साभार

एक प्रति : 2.00 रु.
वार्षिक चंदा : 20 रु.

विषय-सूची

भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन 2
डा. बद्री विशाल त्रिपाठी
भारत में पशुपालन व शुष्क भूमि 5
डा. सईद अहमद खान
ग्रामीण अर्थव्यवस्था और आपरेशन फ्लड 8
ब्रजलाल उनियाल
डेयरी व्यवसाय : बहुत अधिक है लाभ की गुंजाइश 11
ममता
दूध उत्पादकों का आर्थिक जन-जीवन–एक अध्ययन 12
अनिल चौहान एवं रा.के. शर्मा
राजस्थान में डेरी विकास 15
मनीराम पूनिया
सच है कृषक महान 17
श्रीमती रानी अग्रवाल
ग्रामीण आदिवासी महिलाएं-प्रगति की ओर 18
श्रीमती मंजु सिंह
श्वेत क्रांति की ओर बढ़ते कदम 19
कुलदीप शर्मा
खुद का न्याय 22
पूरन सरमा
जैसलमेर मरुस्थल में पशुधन संवर्द्धन हेतु सार्थक अन्वेषण 27
शम्भूदान रतनू
ग्रामीण-आर्थिक विकास में श्वेत-क्रांति की भूमिका 31
गणेश कुमार पाठक
मछली पालन कैसे करें 32
डा. सी.जे. जुनेजा
मधुमक्खी पालन 35
गंगाशरण सैनी
डेयरी सहकारिता और ग्रामीण विकास 38
डा. एस.एल. मक्कड़
जयसमन्द में मत्स्य पालन एवं आदिवासी 40
रणछोड़ त्रिपाठी

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 384888

भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन

डा. बद्री बिशाल त्रिपाठी

आदि काल से लेकर वर्तमान तक प्रत्येक सामाजिक अवस्था में आजीविका अर्जन के लिये पशुधन प्रमुख व्यवसाय रहा है। स्थायी कृषि का वर्तमान स्वरूप लगभग 10 हजार वर्ष पूर्व अस्तित्व में आया था। इससे पूर्व की अर्थव्यवस्था सर्वांश में चरागाह एवं पशुपालन पर आधारित थी। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान कृषि के मूल में चरागाह और पशुपालन व्यवसाय ही रहा है। सामाजिक विकास के क्रम में आजीविका अर्जन और जीवन को सुखमय बनाने के नवीन आयाम जुड़े परन्तु पशुपालन के विकल्प के रूप में नहीं। अपितु सहक्रियाओं के रूप में स्थायी कृषि आरंभ होने के साथ-साथ पशुपालन और कृषि कार्य साथ-साथ होने लगा। औद्योगिक क्रियाओं के बढ़ने और उनके जटिलतम स्वरूप का आविष्कार होने पर भी पशुपालन व्यवसाय का आधारित महत्व कम नहीं हुआ अपितु बढ़ता गया। वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति की अकल्पनीय सफलताओं के बाद भी आज का समाज अपनी आधारित आवश्यकता के लिये पशुपालन पर ही निर्भर है। भारत में पशुपालन आदिकाल से आजीविका अर्जन का स्रोत रहा है। परन्तु पशुधन विकास के लिये विशेष ध्यान नियोजन काल में ही दिया गया। इस नियोजित प्रयास के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था शनैः शनैः श्वेत क्रान्ति की ओर अग्रसर हो रही है।

पशुधन की संख्या

संख्यात्मक आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था पशुधन के लिये अत्यन्त सम्पन्न है। यहां पशुओं की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत के विविध भागों में जलवायु और भौगोलिक संरचना की विभिन्नता के कारण विभिन्न भागों में अनेक प्रजातियां पायी जाती हैं। पशुधन की संख्या के नवीनतम आंकड़ों की यद्यपि कमी है तथापि उपलब्ध आंकड़ों से इनकी स्थिति का आकलन किया जा सकता है। 1951 की पशुगणना के आंकड़ों के अनुसार भारत में पशुओं की कुल संख्या 292.8 मिलियन थी जो 1961 में बढ़कर 336.4 और 1977 में 369.5 मिलियन हो गयी। इस प्रकार 1951-77 की अवधि में पशुओं की संख्या में लगभग 27 प्रतिशत वृद्धि हुई। इस अवधि में बकरियों की संख्या में सर्वाधिक वृद्धि हुई है। इस अवधि में बकरियों की संख्या में 60.5 प्रतिशत और भैंसों की संख्या में 42.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में सापेक्षित वितरण की दृष्टि से भी भारतीय अर्थव्यवस्था पशुधन के संदर्भ में एक समृद्ध राष्ट्र है। भारत में विश्व के कुल क्षेत्रफल का भाग 2.4 प्रतिशत भाग है जबकि यहां विश्व के समस्त पशुओं का 9.. प्रतिशत भाग है। विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन के एक अध्ययन के अनुसार विश्व की कुल भैंसों का लगभग 50 प्रतिशत और कुल मवेशी का लगभग 15 प्रतिशत भाग भारत में है।

हाल के वर्षों में भारतीय पशुधन की संख्या में संरचनात्मक परिवर्तन आया है। पशुधन के संदर्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था गाय बहुल है। गाय-बैल की संख्या सर्वाधिक होने के कारण इस प्रकार का निष्कर्ष निकाला गया है। 1919-20 में अविभाजित भारत में गाय-बैल 80.4 प्रतिशत और भैंसों की संख्या 17.6 प्रतिशत थी। अब लगातार यद्यपि भैं[illegible] की संख्या बढ़ रही है तथापि गाय-बैल की संख्या ही अधि[illegible] बनी हुई है। नियोजन आरंभ के समय गाय-बैल 78[illegible] प्रतिशत जबकि भैंस की संख्या 21.8 प्रतिशत थी। बा[illegible] वर्षों के आंकड़े, यह प्रदर्शित करते हैं कि अर्थव्यवस्था में [illegible] का महत्व बढ़ रहा है। 1982 के आंकड़ों के अनुसार गाय-[illegible] 73.5 प्रतिशत और भैंस 26.5 प्रतिशत थी। अर्थव्यवस्[illegible] दुग्ध आपूर्ति में भैंस का महत्व अधिक है। 1951-77 [illegible] अवधि में समस्त पशुओं की संख्या में 26.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि इस अवधि में कार्य करने वाले पशुओं की संख्या [illegible]

केवल 23.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह प्रवृति इस तथ्य की सूचक है कि योजना काल में भार ढोने और भार खींचने वाले पशुओं का महत्व तीव्र यंत्रीकरण के कारण कम हो रहा है। यह प्रवृत्ति अर्थव्यवस्था के लिये दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में घातक होगी। सन् 2000 तक देश की जनसंख्या को खिलाने के लिये लगभग 250 मिलियन टन खाद्यान्न की आवश्यकता होगी। इतने खाद्यान्न उत्पादन की आवश्यकता को पूरा करने के लिये जितनी पशुशक्ति की आवश्यकता होगी, उसे 125 मिलियन बैलों से पूरा किया जा सकेगा जबकि 1977 में कार्य करने वाले विभिन्न पशुओं की संख्या 83.2 मिलियन थी। 1950-51 में कार्य करने वाले पशुओं की संख्या 67.3 मिलियन थी। 27 वर्षों की उक्त अवधि में कार्यशील पशुओं की संख्या में लगभग 16 मिलियन की वृद्धि हुई। इस गति से कार्यशील पशुओं की संख्या बढ़ने पर सन् 2000 तक कार्य करने वाले पशुओं की संख्या का 125 मिलियन तक पहुंचना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है।

पशुधन का महत्व

अन्य अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में भारत में पशुधन का विशेष महत्व है। भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्व सामान्य रूप में इसके द्वारा राष्ट्रीय आय में योगदान और विशेष रूप से इनके द्वारा शक्ति के साधन, जैविक खाद, दुग्धउत्पाद तथा मांस, हड्डी एवं खाल प्राप्ति के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। इन आयामों का विवरण निम्नवत दिया जा सकता है।

कृषि उत्पाद और राष्ट्रीय उत्पाद में पशुधन की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश के समस्त कृषि उत्पादन में पशुधन के उत्पादन का अंश 1970-71 में लगभग 6 प्रतिशत था जो 1981-82 में बढ़कर 10.5 प्रतिशत हो गया। हाल के वर्षों में पशुओं से प्राप्त उत्पादन में अपेक्षाकृत अधिक तीव्र गति से वृद्धि हुई। छठे दशक में पशुधन से प्राप्त उत्पादन में [illegible] प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुई थी जबकि सातवें दशक में यह दर बढ़कर 4.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गयी। हरित क्रांति के व्यापक प्रसार के बाद भी सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान लगातार कम हो रहा है। यह यद्यपि आर्थिक विकास का सूचक है, परन्तु इससे कृषि क्षेत्र की मंद गति का आभास होता है। परन्तु समग्र राष्ट्रीय उत्पाद में पशुधन का अंशदान स्थिर बना हुआ है। 1970-71 की कीमतों पर सकल घरेलू उत्पाद में पशुधन से प्राप्त कुल उत्पादन का योगदान 1971-72 में 8.7 प्रतिशत था जो 1979-80 में बढ़कर 9.1 प्रतिशत हो गया। 1981-82 में इसमें कुछ कमी आई और यह घटकर 8.4 प्रतिशत हो गया। इससे यह तो स्पष्ट है कि पशुपालन का सकल घरेलू उत्पाद में महत्वपूर्ण योगदान है। अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पादन में पशुधन के उत्पादन का योगदान वानिकी के योगदान से लगभग 7 गुणा और मत्स्यापालन से 12 गुणा अधिक है। रोजगार प्रदान करने की दृष्टि से भी पशुधन की महत्वपूर्ण भूमिका है।

पशुधन देश की कृषि अर्थव्यवस्था का एकमात्र आधार है। देश का कृषि कार्य यंत्रशक्ति पर नहीं अपितु पशुशक्ति पर आधारित है। कई समृद्ध राष्ट्रों की कृषि में यंत्र शक्ति का महत्व बढ़ गया है। भारतीय कृषि भी उसी ओर अग्रसर हो रही है। कृषि का स्वरूप पूंजीवादी हो रहा है। परन्तु यह यंत्र शक्ति ऊर्जा के गैर नवीकरण स्रोत पर आधारित है जिसके निकट भविष्य में रिक्त हो जाने का संकट बना है। अतः कृषि प्रणाली की पशुधन पर निर्भरता एक प्राकृतिक विधान की भांति नियति है। कृषि के विभिन्न कार्यों यथा जुताई, बोआई, सिंचाई, फसल कटाई, परिवहन आदि के लिये पशुश्रम का ही प्रयोग किया जाता है। आज भी भारतीय कृषि का अस्तित्व पशुधन के अभाव में संभव नहीं है। कृषि के इन आधारित कार्यों के आधार स्तम्भ होने के कारण पशुओं को खेती की रीढ़ माना जाता है जो स्वयं भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। इसीलिये तो भारतीय जनमानस पशुओं की आराध्यदेव तुल्य पूजा करता आया है। बैलगाड़ी और विभिन्न भारवाहक पशु आज भी जितना सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाते हैं, वह रेल और मोटर परिवहन के लिये दुष्कर ही है। अनुमान है कि कृषि में पशुश्रम का अनुमानित मूल्य प्रतिवर्ष लगभग 500 करोड़ रुपये वार्षिक है। कुछ विद्वानों ने तो पशुश्रम का अनुमानित मूल्य प्रतिवर्ष लगभग 15,000 करोड़ रुपये वार्षिक माना है। भार खींचने वाले और भार ढोने वाले पशु ग्रामीण अर्थव्यवस्था को गतिमान बनाये हुए हैं। देश के दूरस्थ गांवों का राष्ट्र की मुख्य धारा से सम्पर्क बनाये रखने में आज भी पशुओं की भूमिका उल्लेखनीय है।

पशुपालन को बढ़ावा देने का एक अत्यन्त प्रमुख कारण पशुओं से मिलने वाली खाद है। यह अनुमान है कि भारत में पशुओं से प्रति वर्ष 120 करोड़ टन गोबर प्राप्त होता है। इसमें से 40 करोड़ टन गोबर का प्रयोग ईंधन के रूप में और 22 करोड़ टन गोबर खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। शेष

मात्रा व्यर्थ ही जाती है। इसी क्रम में गोबर में निहित रासायनिक तत्वों को मिथेन गैस के रूप में परिवर्तित करके ईंधन के रूप में और उसके अवशिष्ट भाग को खाद के रूप में प्रयुक्त करने की विधि अपनायी गयी है। इस प्रकार के बायो गैस संयंत्रों का प्रथम परीक्षण 1939 में किया गया था। इसके प्रसार में खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बायोगैस संयंत्र आज देश के विभिन्न भागों में ऊर्जा, ईंधन और खाद की आवश्यकता पूरी करने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर रहे हैं। इनकी सम्यक क्रियाशीलता के किसी रिसाव को रोककर इनसे अनुकूल परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

पशुधन कई उद्योगों का आधार है। दुग्ध एवं दुग्ध उत्पादन, चमड़ा, मांस एवं ऊन विभिन्न उद्योगों के आधार हैं। पशुओं की खाल से जीवनोपयोगी विविध वस्तुयें बनाई जाती हैं। चमड़ा उद्योग देश के उद्योगों में प्रमुख स्थान रखता है। यह अनुमान है कि चमड़ा उद्योग से पर्याप्त विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। देश की जनसंख्या का एक प्रमुख भाग मांसाहारी है। पशुओं से मांस की आपूर्ति होती है। पशुओं से प्राप्त, देश के ऊनी वस्त्र, उद्योग का एक मात्र आधार है। ऊनी वस्त्र देश की सम्पूर्ण जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करता है। देश का गलीचा उद्योग विदेशी मुद्रा अर्जन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। ऊन का उत्पादन योजनाकाल में लगातार बढ़ा है।

संतुलित भोजन प्रदान करने में दुग्ध एवं दुग्ध उत्पादन की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है। शाकाहारी जनसंख्या के लिये दुग्ध और दुग्ध उत्पादन एवं भोजन अनिवार्य घटक हैं। कहा जाता है कि प्राचीन भारत में दुग्ध और दुग्ध उत्पादन की बहुतायत थी जो इसकी प्रचुरता का संकेत करती है। कालक्रम में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के कमजोर होने के साथ-साथ पशुपालन व्यवसाय भी कमजोर होता गया। नियोजन काल की प्रथम अवधि में दुग्ध उत्पादन की स्थिरता के कारण प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धि में कमी आई। 1987-88 में प्रति व्यक्ति दैनिक दुग्ध उपलब्धि का स्तर बढ़कर 158 ग्राम हो गया। 1950-51 में कुल 17 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन हुआ था। 1960-61 में 20 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन हुआ और यही स्तर 1970-71 में भी बना रहा। इसके प्रति लगातार प्रयासों के फलस्वरूप बाद के वर्षों में स्थिति सुधरती गयी और 1980-81 में कुल 32 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन हुआ। 1987-88 में दुग्ध का कुल अनुमानित उत्पादन लगभग 46 मिलियन टन है। यह प्रवृत्ति अवश्य ही स्वागत योग्य है। यह अनुमान है कि सन् 2000 तक देश की जनसंख्या लगभग 100 करोड़ हो जायेगी। ऐसी स्थिति में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 200 ग्राम दूध प्रदान करने के लिये लगभग 76 मिलियन टन दूध की आवश्यकता होगी। इसी पक्ष को ध्यान में रखकर सन् 2000 के लिये 70 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है। दुग्ध उत्पादन में अत्यन्त गंभीर प्रयास की आवश्यकता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि पशुपालन का भारतीय अर्थव्यवस्था में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः पशु भारतीय अर्थव्यवस्था के आधार हैं। भारतीयों की पशुधन के प्रति असीम श्रद्धा का आधार इन पशुओं की जीवनदायिनी भूमिका ही है। भारत अत्यधिक जनसंख्या वाला देश है। इतनी बड़ी जनसंख्या को जो भोजन प्राप्त होता है, उसका एक-एक दाना पशुओं द्वारा की गयी जुताई या अन्य कार्यों का प्रतिफल है। मण्डी तक ले जाया जाने वाला अनाज बैलगाड़ी, ऊंट तथा अन्य भारवाहक पशुओं की भूमिका स्पष्ट करता है। देश के समस्त नागरिकों का बौद्धिक और शारीरिक विकास पशुओं से प्राप्त उत्पादन पर निर्भर है।

78/2 बांध रोड, एलनगंज
इलाहाबाद —211002

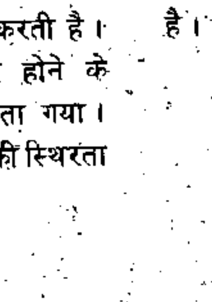

भारत में पशुपालन व शुष्क भूमि

डा. सईद अहमद खान
भूगर्भ विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

भारत में उष्ण शुष्क क्षेत्र करीब 3,17,090 हैक्टेयर है। मरु भूमि का 3/5 भाग राजस्थान में है तथा पाँचवां भाग पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश व कर्नाटक में है। शुष्क क्षेत्र वह है जहां अक्सर सूखा पड़ता है, उच्च तापमान बना रहता है, तेज हवायें चलती हैं जिससे मिट्टी के कटते जाने की स्थिति बन जाती है, पानी काफी गहराई में और कहीं-कहीं मिलता है।

देश के कुल भूभाग का करीब दस प्रतिशत शुष्क क्षेत्र है और देश के कुल अनाज उत्पादन का केवल 2.41 प्रतिशत ही इस इलाके में होता है। लेकिन शुष्क क्षेत्रों में खेतीबाड़ी में लगे लोगों की संख्या (72 प्रतिशत) अधिक है जबकि पूरे देश में इनकी संख्या 69 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट है कि शुष्क क्षेत्र की जलवायु तथा मिट्टी अनाज उत्पादन के पूरी तरह उपयुक्त नहीं है। लेकिन इस इलाके में कम अनाज उत्पादन का मुख्य कारण पानी की कमी है। इसलिए इन क्षेत्रों में फसल का नियमित चक्र रख पाना कठिन है। मगर, वहां पशुपालन कार्यक्रम बहुत उपयुक्त रहता है।

हमारे देश में शुष्क इलाकों में पशुपालन विकास का एक व्यापक कार्यक्रम चलाना निम्नलिखित कारणों से आवश्यक है :—

1. शुष्क क्षेत्रों की जमीन व जलवायु फसलों की तुलना में पशुपालन के लिये अधिक उपयुक्त है।
2. जमीन तथा वर्षा की स्थिति के कारण चारे वाली फसल आसानी से उगायी जा सकती है।
3. ऐसे क्षेत्रों में पशुओं की संख्या बहुत अधिक होती है।
4. शुष्क इलाकों में बंजर तथा खेती की दृष्टि से बेकार स्थानों पर पशुओं के लिये चारा उपलब्ध होता है तथा मजदूरी सस्ती होती है।
5. भारत की अनाज उत्पादन की तुलना में पौष्टिक आहार के मामले में स्थिति अधिक खराब है। देश की करीब साठ प्रतिशत आबादी कुपोषण से पीड़ित है। इसलिये इनकी दैनिक खुराक में दूध, मक्खन, पनीर व माँस को शामिल करना बहुत आवश्यक है।

हमारे देश में पौधों से पशुओं और फिर पशुओं से इन्सान को भोजन में पौष्टिकता दिलाने के क्रम को मजबूत बनाने का कोई बड़ा कार्यक्रम नहीं अपनाया गया है और अनाज की आहार प्रणाली पर ही जोर दिया जाता रहा है। दुनिया के अधिकतर विकसित देश आहार की इस प्रणाली को अपना रहे हैं। भारत पूरे देश में आम तौर पर तथा शुष्क क्षेत्रों में खास तौर पर पशुपालन विकास कार्यक्रम अपनाकर इस प्रणाली को प्रोत्साहन दे सकता है। यद्यपि शुष्क क्षेत्रों में पशुपालन मुख्य धंधा है और वहां की अर्थव्यवस्था में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है परन्तु इसका स्थान खेतीबाड़ी के बाद ही आता है। अध्ययन बताते हैं कि शुष्क क्षेत्रों में पशुपालन के तरीके परम्परागत हैं और उत्पादन बहुत कम है।

भारत में शुष्क क्षेत्र 3 करोड़ 17 लाख हैक्टेयर में फैला हुआ है और इसमें से 2.9 प्रतिशत क्षेत्र में पारंपरिक चरागाह हैं, 12.1 प्रतिशत परती भूमि है और 20 प्रतिशत बेकार भूमि है। इस तरह कुल शुष्क क्षेत्र का करीब 25 प्रतिशत हिस्सा पशुओं के चराने के लिए उपलब्ध है। प्रति एकड़ चराई क्षेत्र में पशुओं का औसत 6 है जबकि पारंपरिक चरागाहों में इनका औसत काफी अधिक अर्थात प्रति एकड़ 63 है। इस तरह इन पर काफी दबाव रहता है। इसलिये पशुओं की उत्पादन क्षमता बहुत कम हो गयी है। राजस्थान में किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि वर्षा के सामान्य वर्षों में वहां चारे में 36 प्रतिशत कमी आयी है। सूखे और

अकाल की स्थिति में यह कमी अधिक हो जाती है। अतः शुष्क क्षेत्रों में चारा उत्पादन बढ़ाने की तत्काल आवश्यकता है ताकि पशुपालन का आधार सुदृढ़ बन सके। अगर सही उपाय किये जायें तो न केवल चारे की कमी दूर हो सकती है बल्कि उत्पादन वृद्धि से काफी पशुओं का पेट भरा जा सकता है। उपलब्ध आंकड़ों व जानकारी के विश्लेषण से यह कहा जा सकता है कि शुष्क क्षेत्रों में पशुपालन का पर्याप्त विकास न होने के तीन प्रमुख कारण हैं और इन पर तत्काल ध्यान देना आवश्यक है :—

1. चरागाहों का कुप्रबंध

चारे का सबसे बड़ा और सबसे किफायती स्रोत चरागाह है। पशुपालन में सुधार के लिए उपाय अधिकांशतः पारंपरिक चरागाहों के सुधार पर निर्भर करते हैं जिनका बहुत दुरुपयोग होता है। शताब्दियों से कुप्रबंध के कारण हमारे यहां शुष्क क्षेत्रों की स्थिति बदतर होती गयी है। विशेषज्ञों का कहना है कि क्षेत्रों को रेगिस्तान बना डालने में सबसे बड़ा हाथ अनियंत्रित चराई का रहा है। इसलिये यह बहुत आवश्यक है कि पारंपरिक चरागाहों को पशुओं द्वारा पूरी चराई से बचाया जाये और पशुओं को सही समय पर और निश्चित अंतराल के बाद ही चरने के लिये छोड़ा जाये। शुष्क क्षेत्रों में कुछ स्थानों पर चरागाहों की सुरक्षा के लिये बाड़ लगा दी गयी है। इससे वहां चारे का उत्पादन चार से छः गुणा बढ़ गया है। लेकिन बाड़ लगाने का काम बाकी जगह करने के प्रयास नहीं किये गये हैं।

इसके फलस्वरूप चरागाहों का करीब 80 प्रतिशत क्षेत्र खराब हालत में हैं और उसकी देखभाल इतनी भी नहीं हो रही है कि वहां कुछ न कुछ तो उत्पादन हो। इसके अलावा पशु, परती जमीन पर, खाली पड़ी जमीन पर, बेकार जमीन पर चरते हैं जिससे वहां दोबारा उत्पादन की क्षमता घट जाती है और चारे का उत्पादन स्तर कम रहता है। पशु मालिक चरागाहों के संरक्षण में दिलचस्पी नहीं रखते और प्राकृतिक वनस्पति का खुलकर शोषण करते हैं। इसलिये इन क्षेत्रों का बेहतर प्रबंध आवश्यक है ताकि वहां घास मजबूती से पनप सके। हमारे देश में पशुओं की भारी तादाद के कारण चरागाहों पर भारी दबाव पड़ता है और इनके इर्द-गिर्द ठीक बाड़ लगाये बिना पशुपालन कार्यक्रम सफलता से लागू नहीं किया जा सकता।

चरागाहों में उत्पादन बढ़ाने के लिये घास की वे किस्में उगायी जायें जो अधिक उत्पादन भी दें और सूखे से प्रभावित भी न हों। इसके लिये सीवान, कर्द, धामन घास बहुत आवश्यक हैं। अभी अधिकांश जमीन पर कम उत्पादन देने वाली पारंपरिक घास जैसे भारुत, लुंपरा, कुरी उगती है। अधिक उत्पादन देने वाली कहीं-कहीं देखने को मिलती है। इनकी जगह अधिक उत्पादन देने वाली घास उगाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त उन उपायों का व्यापक प्रयोग करना होगा जो चरागाहों के समुचित प्रबंध व विकास में उपयोगी साबित हुये हैं और जिनसे उत्पादन बढ़ा है जैसे कि दोबारा बीज रोपना, जमीन की नमी को संरक्षित रखने के लिये बांध बनाना और बाहरी सीमा पर नालियां बनाना।

2. खेतीकृत चारे की कमी

शुष्क क्षेत्रों में चराई वाले क्षेत्र सीमित हैं लेकिन खेतीकृत चारे के द्वारा चारे की कमी आसानी से दूर की जा सकती है। कृषि उत्पादन में चारे की कमी बढ़ती जा रही है। अभी जितना हरा चारा उपलब्ध है वह 2 करोड़ 41 लाख 70 हजार पशुओं के लिये आवश्यक मात्रा के एक तिहाई से भी कम है। शुष्क क्षेत्रों में कृषि उत्पादन बहुत कम है क्योंकि सिंचित क्षेत्रों में कम उत्पादकता वाली फसलें बोई जाती हैं। अधिकांश कृषि भूमि में कम लाभकारी फसलें उगाई जाती हैं और इनसे उत्पादन कम मिलता है क्योंकि वे अनाज की खेती के लिये कम ही उपयुक्त होती हैं। तो भी अधिकांश आबादी के लिये जीविका का मुख्य साधन कृषि ही है और अन्य क्षेत्रों की तुलना में इसमें प्रति व्यक्ति आय कम है। इसलिये आय में वृद्धि लाने और शुष्क क्षेत्रों में रोजगार बढ़ाने में पशुपालन एक उपयोगी साधन बन सकता है। अगर भूमि का उसकी क्षमता के अनुसार उपयोग किया जाता तो कृषि भूमि के अधिकांश भाग में अनाज उत्पादित न होता लेकिन यह भूमि केवल स्थायी घास के लिये उपयुक्त है। इसलिये भूमि की क्षमता के अनुसार भूमि के बेहतर उपयोग का विकास कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है।

अक्षम भूमि में अनाज का उत्पादन वास्तविकता पर आधारित नहीं है क्योंकि इस भूमि की मिट्टी उपयुक्त नहीं है और इसमें सूखे जैसी दैवी विपत्ति का प्रभाव बड़ा खराब होता है तथा फिर चारे की फसल नगदी फसल से कम लाभकारी नहीं है। करनाल के राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान के निदेशक के अनुसार गेहूं की खेती वाली अच्छी-उत्पादन जमीन में प्रति

हैक्टेयर करीब दो हजार रुपये की आमदनी हो जाती है जबकि डेयरी में तीन से चार हजार रुपये की आय हो जाती है। फिर भी यह अजीब बात है कि चारे की फसल वाली जमीन काफी कम है क्योंकि हमारे किसान हरे चारे के महत्व को समझते नहीं हैं। वे चारे की फसल में उर्वरक डालने को भी बेकार का खर्चा मानते हैं। अतः उन्हें पशु पालन का महत्व समझाना आवश्यक है। चारे की खेती अधिक से अधिक जमीन में करने के प्रयास किये जाने चाहियें। मूंग, मोठ, ग्वार, बाजरा-ये फसलें शुष्क व अर्ध-शुष्क परिस्थितियों में भी आराम से हो जाती हैं। उन्हें चारे वाली फसल के तौर पर व्यापक तौर पर उगाया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त शुष्क क्षेत्रों में कैक्टस एक सुरक्षित चारे के रूप में काम दे सकता है क्योंकि यह न्यूनतम वर्षा के अभाव में भी उग जाता है। यह सूखे को आराम से सह लेता है। इसे व्यापक पैमाने पर उगाने के प्रयास किये जाने चाहिये।

जोधपुर में शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान में हुये अध्ययनों से पता चला है कि बुआई वाली जमीन में फसलों के बीच घास को कतार में बोने से चारे का उत्पादन 20 से 30 प्रतिशत बढ़ जाता है। बुआई वाली जमीन में घास को फलने की अनुकूल परिस्थिति मिलेगी जबकि पूरे क्षेत्र में केवल फसल बोने और पर्याप्त वर्षा न होने से इसके बर्बाद होने की स्थिति में वहां घास उगने की उतनी संभावना नहीं रहेगी। अतः फसलों के बीच इस प्रकार घास की बुआई के प्रयास किये जाने चाहिये।

3. संशोधित किस्मों की अपर्याप्त उपलब्धता

पशु मालिक अपने पशुओं के समुचित विकास के लिये आवश्यक देखभाल व खर्च को महत्व नहीं देते क्योंकि उन्हें पशुओं पर खर्च का अच्छा मुनाफा नहीं मिलता। बढ़िया किस्म के पशुओं की सप्लाई सीमित आधार पर की जाती है। अगर पशु अच्छी किस्म के हों, अच्छे उत्पादन वर्ग के हों तो चारा उत्पादन में पूंजी लगाने को प्रोत्साहन मिल सकता है। अब पशुओं की अच्छी व सुधरी हुई किस्में विकसित हो चुकी हैं। उदाहरण के तौर पर भारतीय व विदेशी नस्लों की संकर किस्में बहुत उपयोगी साबित हो रही हैं। इनसे न केवल दूध का उत्पादन बढ़ा है बल्कि वे अच्छी देसी नस्लों से आधे समय से अधिक कम में जवान हो जाती हैं। पशु पालकों को सुधरी हुई नस्ल के पशु उपलब्ध कराना कोई कठिन काम नहीं है।

अगर व्यापक उपाय किये जायें तो शुष्क व अर्ध-शुष्क इलाकों में चारे की उपज बढ़ाना कोई कठिन काम नहीं है। इसके लिये बहुत संभावनायें मौजूद हैं। शुष्क क्षेत्रों में चारे का उत्पादन बढ़ाने की भारी आवश्यकता है। इससे इन क्षेत्रों का आर्थिक विकास जल्दी हो सकेगा तथा अधिसंख्य पशुधन के लिये पौष्टिक आहार व्यवस्था विकसित हो सकेगी।

अनुवाद : ओम प्रकाश दत्त
43, मैत्री अपार्टमेंट्स,
ए–3, पश्चिम विहार,
नयी दिल्ली-110063

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था और आपरेशन फ्लड

बृजलाल उनियाल

भारत की लगभग 80 करोड़ जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में आहार मुहैया कराना वास्तव में एक गंभीर समस्या है। अब भी याद ताज़ा है कि सन् 1960 वाले दशक के आरंभ में विदेशी प्रख्यात कृषि वैज्ञानिकों ने भविष्यवाणी की थी कि भारत को अगले कुछ दशकों में भयंकर खाद्यान्न के अभाव का सामना करना पड़ेगा। भला हो हमारे कृषि वैज्ञानिकों का, मेहनतकश किसानों का और देश के नेतृत्व का जिन्होंने इस भविष्यवाणी को झुठला तो दिया ही, साथ ही मांगने वाले कटोरे को दाता के कटोरे में बदल दिया। पर कुपोषण की समस्या तो अब भी है और इसका निराकरण हमें करना ही होगा।

हमारे देश के लोगों के, विशेष रूप में गरीब तबके के, आहार में कैलोरी, प्रोटीन, विटामिन 'ए' और खनिज तत्वों की कमी है। इन कमियों को निस्संदेह दूध व दूध से बने पदार्थों से दूर किया जा सकता है और इसके लिए जरूरत है कि हम देश में दूध के उत्पादन को बढ़ाएं। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद की पोषण प्रवर समिति ने सिफारिश की है कि स्कूल जाने वाले बच्चों को 200 ग्राम दूध प्रतिदिन मिलना चाहिये। अतएव स्वाभाविक था कि हमारे योजना निर्माताओं का ध्यान डेरी उद्योग पर अधिक केन्द्रित हो। विशेषज्ञों का मत है कि यदि बचपन में कुपोषण के कारण बच्चे में कोई मानसिक अथवा शारीरिक न्यूनता आ जाती है तो बाद में कितने ही उपाय करें, उसे दूर नहीं किया जा सकता। दूध से प्राप्त 90 प्रतिशत प्रोटीन को शरीर ग्रहण कर लेता है। अब सरकार ने दूध उत्पादन व डेरी उद्योग की ओर ध्यान इसलिए भी देना शुरू कर दिया है कि देश को दूध की आवश्यकता तो है ही, साथ ही गांव के आम किसान की समृद्धि वहां की उन सरकारी समितियों के साथ जुड़ी हुई है जो इस काम में जुटी हुई हैं और श्वेत क्रान्ति में योगदान कर रही हैं।

'आपरेशन फ्लड' से पूर्व की स्थिति

लगभग 45 साल पहले हम दूध बाहर से मंगवाते रहे। दूध इतना कम पैदा किया जाता था कि देश की कम से कम आवश्यकता को भी पूरा नहीं किया जा सकता था। इतना ही नहीं देश के दूध विक्रेता गंदी व अस्वास्थ्यकर स्थितियों में दूध निकालते थे और अशुद्ध व मिलावट वाला दूध धड़ल्ले से बिकता था। इस ओर जब देश के कुछ कर्णधारों का ध्यान गया तो समवेत प्रयत्नों में लोग जुट गए। कहां तो 50-51 में दूध केवल 1 करोड़ 70 लाख टन पैदा होता था, 80-81 में बढ़ कर यह 3 करोड़ 16 लाख टन हो गया और 87 में 4 करोड़ 61 लाख की विपुल मात्रा तक पहुंच गया। इस समय देश की दुधारू गाय-भैंसों का मूल्य लगभग 37,000 करोड़ रुपये है। हमारे राष्ट्र की कुल आमद का लगभग 6000 करोड़ रुपया अकेला डेरी उद्योग से मिलता है। कुल राष्ट्रीय आय का 15 प्रतिशत भाग अकेले पशुपालन क्षेत्र से मिलता है। हमारे देश की जनता का लगभग 75 प्रतिशत खेती बाड़ी पर गुजारा करता है। कम ही लोगों के पास बड़े खेत हैं, अधिकतर या तो छोटे किसान हैं या फिर सीमान्त किसान हैं और बहुत से भूमिहीन किसान हैं जो दूसरों के खेतों पर काम करते हैं। लगभग सभी किसान गाय-भैंस तो रखते ही हैं। ये सभी लोग प्रायः खेती के बचे-खुचे अवशेषों को मवेशियों को खिलाते हैं। जमीन तो सीमित है और इस पर भार पड़ रहा है दोहरे आहार का — यानि मानव के लिए और पशुओं के लिए। इसका भी निराकरण ढूंढ़ना है।

डेरी की अवधारणा

दूध का कम उत्पादन तथा गंदी परिस्थितियों के कारण, डेरी की अवधारणा ने सन् 1950 में जन्म लिया। बोतलबंद दूध की सप्लाई पहले पहल बम्बई में आरे कालोनी में शुरू

की गई। इस प्रायोजना का लक्ष्य स्वास्थ्यवर्धक स्थितियों में वैज्ञानिक तौर तरीके अपनाकर दूध और दूध से तैयार पदार्थों को मुहैया कराना था। इसी उद्देश्य से सन् 1954 में आनंद में 'अमूल' सहकारी उद्योग की स्थापना की गई। इस उद्योग को अन्तर्राष्ट्रीय बाल आयात निधि से सहायता दी गई। इस प्रकार यहाँ दूध, दूध-पाउडर, मक्खन आदि तैयार और मुहैया किया जाने लगा। अमूल की इस संस्था को इस दिशा में मार्गदर्शन कराने का श्रेय है।

आपरेशन फ्लड

इस प्रकार एक समन्वित विकास कार्यक्रम की शुरूआत सन् 1970 में की गई। इसका ही लोकप्रिय नाम है 'आपरेशन फ्लड'। इस प्रायोजना के अन्तर्गत दूध की लगभग 49,000 सहकारी समितियां स्थापित की गईं। इन समितियों के सदस्यों की संख्या 50 लाख थी। किसानों की इन सहकारी समितियों को मिलाकर 168 जिला स्तर की सहकारी यूनियनों का संघ बनाया गया और फिर इन संघों ने भी मिल कर 23 राज्य स्तर के संघ बनाए। आशा की जाती है कि सदस्यों की संख्या 80 लाख तक पहुंच जायेगी।

किसानों को दूध की बिक्री से मिलने वाली आय लगभग दोगुनी हो गई है। इस समय हर साल दूध की सहकारी समितियों को लगभग 8 अरब 50 करोड़ रुपया दिया जा रहा है। निश्चय ही गांव की आर्थिक दशा को सुधारने में यह महत्वपूर्ण कदम है।

सन् 1970 में भारत में प्रति व्यक्ति दूध की खपत लगभग 107 ग्राम थी जो सन् 1986 में बढ़कर 154 ग्राम हो गई है। यों तो दूध की आमतौर पर देश में कमी नहीं है पर देश की आबादी व प्रति व्यक्ति खपत को देखते हुए बहुत कुछ करना बाकी है। इतना तो मानना पड़ेगा कि दाम अवश्य अधिक हैं पर यह क्रम तो औद्योगीकरण की प्रगति के समानान्तर चलता है। यह संतोष का विषय है कि हम यूरोपियन इकोनोमिक कमोडिटी से जितनी मात्रा दूध पाउडर और बटर आयल की मंगाया करते थे उसमें हमने काफी कटौती कर दी है।

आपरेशन फ्लड के दो महत्वपूर्ण चरण तो पूरे हो चुके हैं। अब इसका तीसरा चरण चल रहा है। तीसरे चरण का कार्यक्रम अत्यन्त विशाल है। इस कार्यक्रम को लगभग 170 मिल्क शेडों में अमल में लाया जा रहा है। दूध के संग्रह, संसाधन तथा बिक्री में भारी प्रगति हुई है। सरकार ने इस उद्योग को एक महत्वपूर्ण सुविधा दी है। दूध को बड़ी दूर-दूर लाया-ले जाया जाता है। इस कठिनाई को महसूस करते हुए, सरकार ने 99 रेल के टैंकरों और 875 मोटर-सड़कों पर चलने वाले टैंकरों की व्यवस्था की है। इन टैंकरों द्वारा लगभग 1 करोड़ 30 लाख लीटर माल ढोया जाता है।

भारत एक ऐसा देश है जिसने यूरोप से मिलने वाली सहायता को केवल आपाद कार्यों के लिये प्रयोग में नहीं लाया गया बल्कि उसका भरपूर उपयोग देश में सहकारिता पर आधारित डेरी के प्रसार के लिए किया गया। इसका उद्देश्य दूध व दूध से बने पदार्थों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना था।

तीसरा चरण

आपरेशन फ्लड के तीसरे चरण की अवधि 7वीं योजना के साथ-साथ चल रही है। तीसरे चरण में यह लक्ष्य रखा गया है कि दूध का संग्रह प्रति दिन 18 करोड़ 30 लाख टन पहुंचा दिया जाये और इस दूध को 80 लाख परिवारों से एकत्र किया जाये। इसमें से 1 करोड़ 30 लाख लीटर दूध शहरों को बेचा जायेगा। इसमें कुल लागत लगभग 6 अरब 81 करोड़ रुपये आने की आशा है। इस दौरान शहरी बिक्री व्यवस्था को और भी मजबूत बनाया जा रहा है। आशा की जाती है कि इस अवधि में दूध संग्रह में 132 प्रतिशत की वृद्धि की जायेगी और विपणन में 148 प्रतिशत की।

योजना निर्माताओं का उद्देश्य यह है कि अब साल भर लोगों को दूध मुहैया किया जाये। आमतौर पर भारी गर्मियों के मौसम में जो दूध की कमी होने लगती है, उसका उपाय किया जाये। इसके लिए बिक्री का बुनियादी आधार और बढ़ाया जायेगा। यह काम राष्ट्रीय दूध ग्रिड की सहायता से किया जायेगा।

संसाधन

दूध की मांग और आपूर्ति के बीच जो काफ़ी असंतुलन रहता है, वह क्षेत्रीय भी है और मौसमी भी है। इस असंतुलन को दूर करने में दूध के परिरक्षण और संसाधन महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। इस दिशा में भी काफ़ी प्रगति हुई है। तीसरे चरण के दौरान 1 करोड़ 12 लाख टन दूध प्रतिदिन संसाधित किया जाना है और दूध को भारी मात्रा में सुखाने की व्यवस्था को सुदृढ़ किया जाना है। इसके लिए बहुत भारी लागत आएगी। इस लागत का 70 प्रतिशत भाग ऋण के रूप

दूध उत्पादकों का आर्थिक जन-जीवन—एक अध्ययन

अनिल चौहान
रा.के. शर्मा

दिन प्रतिदिन जनसंख्या की वृद्धि दर बढ़ रही है और भूमि.की उपलब्धता सीमित है। देश में जोतों का आकार छोटा होता जा रहा है और भूमिहीन श्रमिक बढ़ रहे हैं। कृषि गणना के अनुसार, एक हैक्टेयर से कम आकार वाले खेतों का क्षेत्र जो 1970-71 में 50.58 मिलियन हैक्टेयर था, कम होकर 1980-81 में 12.12 मिलियन हैक्टेयर रह गया और दो हैक्टेयर से कम आकार वाले खेतों का क्षेत्र जो 1970-71 में 16.10 मिलियन हैक्टेयर था, घट कर 1980-81 में 10.1 मिलियन हैक्टेयर रह गया है। दूसरी ओर, इस अवधि के दौरान, ऐसे छोटे आकार के खेतों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई है। इसके परिणाम स्वरूप बड़ी संख्या में मजदूर काम की तलाश में गांव छोड़कर शहरों की ओर भाग रहे हैं। यह वास्तव में चिन्ता का विषय है और आज की पहली जरुरत ग्रामीण क्षेत्रों में ही रोजगार के साधन जुटाने की है।

ग्रामीण जन संख्या के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करने और उनकी आय में वृद्धि करने के दूसरे सर्वोत्तम विकल्प के रूप में डेरी तथा सम्बद्ध कार्यों को माना गया है। ये कार्य न केवल श्रम प्रधान हैं बल्कि ग्रामीण परिवारों को अपनी रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने के लिए नकद पैसा भी देते हैं। इसके अतिरिक्त दुग्ध यूनियनों द्वारा डेरी सहकारी समितियों के नेटवर्क की मार्फत दूध के विपणन की व्यवस्था हो जाने से ग्रामीण क्षेत्रों में दुधारु पशु पालन को प्रोत्साहन मिला है। यह अनुमान लगाया गया है कि डेरी उद्योग में लगभग छः लाख गांवों में रह रहे 7 करोड़ ग्रामीण परिवार डेरी उद्योग में लगे हुए हैं और इस कार्य में 145 मिलियन हैक्टेयर भूमि अन्तर्ग्रस्त है। इन दूध उत्पादकों के पास कुल दुधारु पशुओं के 53 प्रतिशत पशु हैं और ये देश के कुल दूध उत्पादन में 50 प्रतिशत दूध जुटाते हैं। इसलिए उन्हें उचित प्रोत्साहन देने और इनकी आवश्यकताओं के अनुसार कार्यक्रम तैयार करने के लिए बड़े स्तर पर सामाजिक-आर्थिक सर्वेक्षण कार्यक्रम (एच.ई.टी.पी.) के अन्तर्गत बरेली के मौजीपुर खण्ड में किया गया था। अध्ययन के उद्देश्य निम्निलिखित थे :

1. दूध उत्पादकों की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन करना।
2. दूध के उत्पाद, विपणन व बकाया दूध तथा दूध की उत्पादन क्षमता का अनुमान लगाना।
3. किसानों की आम समस्याओं का पता लगाना।

सामग्री तथा तरीके

उत्तर प्रदेश के बरेली जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में वर्ष 1987 में एक सर्वेक्षण किया गया था। अध्ययन के लिए बरेली शहर के मौजीपुर खण्ड में माण्डा तथा बहिरपुरा गांवों को चुना गया था।

आवश्यक आंकड़े एकत्र करने के लिए प्रत्येक गांव के कुल दूध उत्पादकों के लगभग 10 प्रतिशत अर्थात 50 दूध उत्पादकों का चयन किया गया और बाद में इन्हें क्षेत्र, भूमिहीन श्रमिकों, सीमान्त, छोटे तथा बड़े किसानों की संख्या के आधार पर 5 वर्गों में विभाजित किया गया था। अलग अलग व्यक्ति से बातचीत करके आयु, जाति, शिक्षा कारोबार, आय, दूध के उत्पादन, विपणन और अधिशेष मात्रा आदि के बारे में विस्तृत जानकारी एकत्र की गई थी। साधनों तथा परिसम्पत्तियों के मूल्य का उस क्षेत्र में चल रही बाजार दर पर अनुमान लगाया गया था।

परिणाम तथा विचार विमर्श

अधिकांशतः नमूना दूध उत्पादकों में से 62 प्रतिशत ग्रामीण समाज के निचले तबके के थे जिनमें 54 प्रतिशत

पिछड़ी जातियों के, 16 प्रतिशत अनुसूचित जातियों के और 38 प्रतिशत समाज के उच्च वर्गों के थे। किए गए अध्ययन में परिवारों की श्रेणियों में दूध उत्पादकों के बड़े परिवारों के पास बड़े आकार के फ़ार्म समूह थे। यह देखा गया कि केवल 10 प्रतिशत ऐसे थे जिनमें सदस्यों की संख्या 2 या 3 थी, 36 प्रतिशत परिवारों में सदस्यों की संख्या 3 से 6, 34 प्रतिशत परिवारों में 6 से 9 तथा शेष 30 प्रतिशत परिवारों में सदस्यों की संख्या 10 से 17 थी जो इस बात का सूचक हैं कि गांव में ज्यादा जन संख्या बड़े परिवारों की है। दूध उत्पादकों में 28 प्रतिशत 30 वर्ष तक आयु, 54 प्रतिशत 31 से 50 वर्ष तक आयु और 16 प्रतिशत वृद्ध अर्थात 50 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के थे। ये आंकड़े इस बात को दर्शाते हैं कि अधिकांश दूध उत्पादक आर्थिक दृष्टि से सक्रिय थे। दूध उत्पादकों की शिक्षा का स्तर काफी नीचा था। 50 प्रतिशत दूध उत्पादक अनपढ़, 24 प्रतिशत प्राथमिक स्तर तक, 18 प्रतिशत उच्चस्तर तक तथा केवल 8 प्रतिशत कालेज स्तर तक शिक्षित थे। यह भी देखा गया कि मध्यम तथा बड़े किसानों की तुलना में सीमान्त और छोटे किसानों में निरक्षरता का प्रतिशत कहीं अधिक था।

दूध उत्पादकों का व्यावसायिक विभाजन यह दर्शाता है कि 90 प्रतिशत दूध उत्पादकों का मुख्य व्यवसाय खेती है और शेष 10 प्रतिशत लोगों का व्यवसाय मजदूरी करना है। तथापि क्षेत्र में सबसे अधिक उल्लेखनीय बात यह थी कि सभी परिवारों द्वारा दुधारु पशु पालन को दूसरे मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया हुआ था।

निम्नलिखित तालिका विभिन्न श्रेणियों के परिवारों के बीच पशुओं के वितरण को दर्शाती है:

परिवारों की श्रेणी	भैंस शुष्क	भैंस दूधारु	अन्य पशु शुष्क	अन्य पशु दूधारु	बछड़े	बोझ ढोने वाले पशु
1	2	3	4	5	6	7
भूमिहीन श्रमिक	-	4	1	4	3	2
सीमान्त किसान	—	7	2	24	4	23
छोटे किसान	—	13	—	11	12	16
मध्यम किसान	9	10	2	2	4	9
बड़े किसान	5	32	9	8	17	24
समग्र	14	64	14	49	40	74

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक 10 परिवारों के पास 16 भैंसें, 13 गायें, 8 बछड़े तथा 15 अन्य बोझा ढोने वाले अथवा खेतो में काम करने वाले पशु थे। परिवारों की श्रेणी का अध्ययन करने से पता चलता है कि जैसे-जैसे परिवार का आकार बड़ा होता जाता है पशुओं की संख्या में वृद्धि होती जाती है।

इस व्यवसाय में भूमिहीन श्रमिकों, सीमान्त, छोटे, मध्यम तथा बड़े किसानों की प्रति परिवार वार्षिक कुल आय क्रमशः 2040 रु. 2370 रुपये, 2460 रुपये और 4590 रुपये थी जबकि इन परिवारों की वार्षिक प्रति व्यक्ति आय क्रमशः 326 रुपये, 550 रुपये, 438 रुपये और 473 रुपये और 497 रुपये थी।

दूध का कुल औसत उत्पादन, खपत और विपणन

(कि.ग्रा. में)

परिवारों की श्रेणी	प्रतिदिन प्रतिपशु दूध की प्राप्ति भैंस	गाय	कुल उत्पादन	खपत	विपणन के लिए शेष
भूमिहीन श्रमिक	1.32	1.75	3.66	3.66	-
सीमान्त किसान	1.33	2.19	5.27	3.69	1.58
छोटे किसान	3.62	1.12	7.99	4.99	3.00
मध्यम किसान	2.45	2.75	10.00	5.50	4.50
बड़े किसान	3.65	1.65	13.00	10.00	2.90
समग्र	2.50	1.78	7.66	5.43	2.23

भैंस और गाय से प्राप्त औसत दूध की मात्रा क्रमशः 2.5 कि.ग्रा. और 1.78 कि.ग्रा. थी। प्रति परिवार दूध का उत्पादन 7.66 कि.ग्रा. प्रतिदिन था जो परिवार के आकार के अनुसार बढ़ता हुआ था। गांव से बेचने के लिए बचा हुआ दूध उस क्षेत्र में हुए कुल उत्पादन का 29.10 प्रतिशत था।

निष्कर्ष

दूध उत्पादकों के सामाजिक मानदंडों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दूध उत्पादकों, विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्ग के परिवारों का रहन-सहन का स्तर एक सन्तोषजनक स्तर से कहीं नीचा है। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, छोटी जोतों पर

जनसंख्या का दबाव बहुत अधिक है इसलिए ग्रामीण जन संख्या के लिए आय और रोजगार बढ़ाने के उद्देश्य से उचित योजनाओं की मार्फत दुधारु पशुपालन तथा सम्बद्ध कार्यों जैसे वैकल्पिक उद्यमों को बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है। कम उत्पादक किस्म की गायों, भैंसों के अधिक दबाव के कारण दूध उत्पादन को बढ़ाने का कार्यक्रम पिछड़ रहा है। इसलिए इन क्षेत्रों में दूध का उत्पादन बढ़ाने और दूध उत्पादकों की आय में वृद्धि करने के लिए पशुओं की दोगली किस्मों की खरीद के लिए ऋण देने और उनसे दूध को उचित मूल्यों पर खरीदने तथा अन्य आवश्यक प्रोत्साहन दिये जाने की तत्काल आवश्यकता है।

अनुवाद : किरण गुप्ता

पृष्ठ 11 का शेष

पशुओं की खाल में इन्जैक्शन लगाकर दूध निकालना एक आम बात हो गई है। गली मौहल्लों में डेरी अवश्य मौजूद हैं लेकिन अधिकांश पशु पालने और उनसे दूध निकालने आदि के ढंग वही पुराने हैं तथा उनसे श्रम और समय का अपव्यय होता है। इस काम में नए तरीके अपना कर कम खर्च में अधिक दूध लिया जा सकता है।

दूध का उत्पादन बढ़ाने का एक रास्ता यह भी है कि अच्छी नस्ल के पशु लिए जायें। उन्हें सस्ता पौष्टिक आहार दिया जाये तथा वे रोग मुक्त रहें साथ ही साथ संकरण तकनीक से पैदा हुए पशु से दुग्ध उत्पादन में दस गुना वृद्धि सम्भव है।

आमतौर पर हमारे देश में दूधारु पशुओं से अधिकाधिक लाभ कमाने की कोशिश तो की जाती है लेकिन उनके आहार पर ध्यान नहीं दिया जाता। फलस्वरूप वे कुपोषण के शिकार होकर असमय ही मृत्यु के मुँह में चले जाते हैं। हरा चारा, खासतौर पर दलहनी फसलों का आहार देना चाहिए जिसमें पर्याप्त मात्रा में खनिज मिश्रण भी हों।

इसके अलावा वैज्ञानिकों ने संतुलित आहार की नई तकनीक पशु पालकों के लिए विकसित की हैं जो डेरी विज्ञान संस्थान, कृषि विश्वविद्यालय तथा जिला पशुधन अधिकारियों से सम्पर्क करने पर ज्ञात हो सकती हैं।

पशु के रखने का स्थान साफ सुथरा और हवादार होना चाहिए। गोबर आदि की सफाई के लिए अच्छी व्यवस्था का होना बहुत जरूरी है अन्यथा गन्दगी से बीमारी बढ़ती है। रोगी पशु के उपचार हेतु रोग रोधी टीके बाजार में उपलब्ध हैं।

दुग्ध व्यवस्था में अधिक लाभ अर्जित करने के लिए छोटी-छोटी बातों पर भी विशेष सावधानी की जरूरत होती है। स्वच्छ दूध के लिए पानी, बर्तन और पशुशाला भी साफ होनी बहुत जरूरी है। साथ ही बासी दूध को ताजे दूध में न मिलाएं। दूध को शीतल बनाए रखने के लिए उसे ठण्डे पानी में रखें। ऐसा करके जहां एक ओर दूध अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है वहीं दूसरी ओर उससे तैयार पदार्थ भी अच्छी क्वालिटी के हो सकेंगे।

दूध के व्यवसाय में उन्नति की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं। अतः वैज्ञानिक ढंग से इसमें प्रबन्ध किया जाये तो अधिक होने वाले खर्च को घटाया जा सकता है और दूध का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है तथा अच्छी विपणन की स्थिति में भरपूर लाभ भी कमाया जा सकता है। यह कथन भी सत्य है कि साधारण नस्ल के दस पशुओं की तुलना में अच्छी नस्ल के तीन पशु ही काफी होते हैं क्योंकि उनका खर्च कम होता है और उत्पादन कहीं ज्यादा। अतः डेरी उद्योग में लाभ की गुंजाइश अधिक है।

एच—88 शास्त्री नगर
मेरठ (उ.प्र.)

राजस्थान में डेरी विकास

मनीराम पूनिया

डेयरी विकास एवं पशुपालन के बिना राजस्थान के विकास की कल्पना दुराशा मात्र है, क्योंकि राजस्थान की ग्रामीण जनता विशेषकर मरुस्थल के निवासी कृषि की अपेक्षा पशुपालन पर अधिक निर्भर करती है। राजस्थान न केवल पशुधन की संख्या की दृष्टि से बल्कि उनकी नस्ल और किस्म के कारण सम्पूर्ण देश में अद्वितीय स्थान रखता है। देश के कुल पशुधन का 18 प्रतिशत राजस्थान में है और देश में उपलब्ध दूध का 11 प्रतिशत राजस्थान में ही पैदा होता है। राज्य में 1.35 लाख गायें व 60 लाख भैंसें हैं जिनसे 35 लाख टन दूध प्रतिवर्ष पैदा होता है। राज्य की 12 प्रतिशत आय डेयरी विकास कार्यक्रम से होती है। पशुधन की दृष्टि से राज्य का उत्तर प्रदेश के पश्चात दूसरा स्थान है। अतः राज्य के बहुमुखी विकास के लिए प्रदेश की योजनाओं में पशुधन एवं दुग्ध विकास को प्रमुख स्थान दिया गया है।

राजस्थान में डेयरी विकास का कार्यक्रम 1972-73 में ऑपरेशन फ्लड प्रथम योजना के नाम से राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम एवं विश्व बैंक की सहायता से विशिष्ट योजना संगठन द्वारा आरम्भ किया गया था। राज्य में डेयरी का कार्य प्रारम्भ में पशुपालन विभाग द्वारा देखा जाता था, किन्तु समय उपरान्त डेयरी क्षेत्र के लिए अलग से एक निदेशक का पद सृजित किया गया एवं उनके द्वारा ही डेयरी क्षेत्र का सम्पूर्ण कार्य देखा जाने लगा। जब डेयरी योजनाओं के लिए सन् 1973 में भारतीय डेयरी निगम द्वारा राशि प्रदान की गई, तब राज्य डेयरी संघ की स्थापना हुई, जिसका कार्य क्षेत्र राज्य के केवल छः जिलों जयपुर, अजमेर, अलवर, भीलवाड़ा, टोंक एवं सवाई माधोपुर तक ही सीमित था। डेयरी विकास के लिए सुनियोजित योजना की दृष्टि से 1979 में, राजस्थान को-ओपरेटिव डेयरी फैडरेशन की स्थापना हुई एवं इसका कार्य क्षेत्र बढ़ाकर सम्पूर्ण राजस्थान के लिए कर दिया गया।

राज्य में डेयरी विकास कार्यक्रमों के लिए 'अमूल' पद्धति पर आधारित त्रिस्तरीय सहकारी व्यवस्था अपनाई गई है। इस त्रिस्तरीय ढांचे को ग्राम स्तर पर दुग्ध उत्पादन सहकारी समिति, जिला स्तर पर दुग्ध उत्पादन सहकारी संघ एवं राज्य स्तर पर डेयरी फैडरेशन के रूप में संगठित किया गया है। इसमें निम्नस्थ दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करने के लिए पशु नस्ल सुधार, संतुलित पशु आहार व उन्नत चारा, बीज वितरण एवं पशुओं में रोगों की रोकथाम तथा उपचार की सुविधाएं भी प्रदान करती है। मध्यवर्ती इकाई जिला दुग्ध सहकारी संघों का सीधा दायित्व अपने क्षेत्र की दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों के समन्वय एवं नियन्त्रण के साथ-साथ पशुओं का दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए कृत्रिम गर्भाधान, आपात चिकित्सा इकाईयों की व्यवस्था व तकनीकी जानकारी पहुंचाना है। राज्य में शीर्षस्थ स्तर पर राजस्थान कोओपरेटिव डेयरी फैडरेशन है जिसके अधीन डेयरी संयंत्र एवं अवशीतलन केन्द्र क्रियाशील हैं जो दुग्ध उत्पादकों के लिए दूध एवं दुग्ध पदार्थों के विपणन हेतु बाजार की व्यवस्था करते हैं।

डेयरी संयंत्र

डेयरी विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत संकलित दूध का विधायन एवं पाश्चीकरण कर उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराने हेतु राज्य के विभिन्न भागों में डेयरी संयंत्रों की स्थापना की गई है। अजमेर, अलवर, जयपुर, हनुमानगढ़ एवं रानीवाड़ा में 10 लाख लीटर प्रतिदिन क्षमता के, जोधपुर व बीकानेर में 5 लाख लीटर प्रतिदिन क्षमता के, भीलवाड़ा में 1 लाख लीटर प्रतिदिन क्षमता का, उदयपुर व कोटा में 25 हजार लीटर प्रतिदिन क्षमता के डेयरी संयंत्र, इस समय कार्यशील हैं।

अवशीतलन केन्द्र

राज्य में दूरस्थ गांवों से डेयरी संयंत्र तक दूध संकलित

करने में काफी समय लगता है अतः दूध के खट्टा हो जाने का खतरा रहता है। इस समस्या के समाधान हेतु राज्य में विभिन्न स्थानों पर मध्य मार्गों पर डेयरी फैडरेशन ने अवशीतलन केन्द्र बनाये हैं। राज्य में प्रतिदिन 10 हजार लीटर क्षमता वाले अवशीतलन केन्द्र बाड़मेर, डूंगरपुर, नागौर, छतरगढ़, बांसवाड़ा, बज्जू, नोहर व फलौदी में कार्यशील हैं। 20 हजार लीटर प्रतिदिन क्षमता वाले अवशीतलन केन्द्र पोकरण, मालपुरा, तिजारा, पाली, मेडता सिटी, कोटपुतली, दौसा, ब्यावर, गंगापुर सिटी, बालोतरा, विजय नगर, सूरत गढ़ व फालना में तथा 30 हजार लीटर प्रतिदिन क्षमता वाले केन्द्र लूणकरणसर व सरदार शहर में हैं। इन सभी अवशीतलन केन्द्रों की क्षमता 3.90 लाख लीटर प्रतिदिन है।

पशु आहार संयंत्र

पशुओं को स्वस्थ रखने एवं उत्पादन बढ़ाने हेतु पौष्टिक चारे के अतिरिक्त संतुलित पशु आहार भी आवश्यक है। सामान्यतः कृषक अपने पशुओं को चारे में बिनौला, खल, ग्वार इत्यादि देते हैं जोकि मंहगे होते हैं एवं पशुओं को पूर्ण आहार भी नहीं मिलता है। राज्य में कोओपरेटिव डेयरी फैडरेशन द्वारा पशुओं को पौष्टिक एवं संतुलित पशु आहार का उत्पादन किया जा रहा है जो सस्ती कीमत पर किसानों को उपलब्ध कराया जाता है। संतुलित पशु आहार के उत्पादन हेतु जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, तबीजी तथा नदबई में संयंत्र स्थापित किये गये हैं जिनकी कुल उत्पादन क्षमता 450 मीट्रिक टन प्रतिदिन है। यह संतुलित पशु आहार जिला दुग्ध उत्पादन संघ द्वारा उपलब्ध करवाया जाता है एवं दुग्ध सहकारी समितियां तथा ग्राम सहकारी समितियों के माध्यम से पशु पालकों को वितरित किया जाता है।

दुग्ध वितरण

राज्य में असंख्य गांवों से संकलित दूध को दूर संयंत्रों में कीटाणु रहित करने के बाद बड़े शहरों एवं नगरों में उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर सुलभ कराया जाता है। जयपुर, जोधपुर, भीलवाड़ा, अलवर एवं उदयपुर, में फ्री-पैक की (पोलीथीन थैलियां) मशीन लगाई गई हैं, जिसमें आधा लीटर दूध थैलियों में भरकर विपणन किया जाता है। जयपुर नगर में इस व्यवस्था के अतिरिक्त स्वचालित शीतल दूध केन्द्रों की स्थापना की गई है।

नित्योपयोगी पदार्थों का निर्माण

राज्य में डेयरी संघ के वर्तमान संचालक, राजस्थान कोओपरेटिव डेयरी फैडरेशन को वैसी प्रसिद्धी, सम्मान व नाम दिलाना चाहते हैं जो 'अमूल' व 'मदर डेयरी' को मिला हुआ है। कोई भी संस्थान उसमें निहित उच्च गुणवत्ता के लक्षणों के कारण जनप्रिय हो सकता है। अतः जयपुर, जोधपुर, भीलवाड़ा, उदयपुर दुग्ध संयंत्रों पर दूध जन्य पदार्थों-घी, मक्खन, पनीर का उत्पादन एवं विपणन किया जा रहा है। जयपुर डेयरी में 'सरस' पेय फ्लेवड मिल्क व स्वादिष्ट छाछ, लस्सी भी तैयार की जाने लगी है। नगरों की स्थानीय दुग्ध आवश्यकता की पूर्ति के पश्चात शेष दूध को दिल्ली भेज दिया जाता है।

डेयरी विकास के सोपान

राज्य में डेयरी संघ सभी अंगों एवं उपअंगों में प्रगति हुई है। डेयरी विकास में प्रारम्भिक चरण में जहां 1972 में दुग्ध उत्पादन सहकारी संघों की संख्या तीन थी वो 1988 में 16 हो गई है। आरम्भ में दुग्ध उत्पादन सहकारी समितियों की संकलन केन्द्रों की संख्या 61 थी वो 1988 में 4314 हो गई है। राज्य के 2.36 लाख किसान परिवारों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक लाभ पहुंच रहा है। राज्य के दुग्ध उत्पादकों को जहां 1972-73 में 1.35 लाख रुपये का भुगतान किया गया वहीं 1988 में 1872.41 लाख रुपये के नये कीर्तिमान तक पहुंच गया है। राज्य में डेयरी विकास पर चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 284.38 लाख रुपये का विनियोग हुआ वहीं 5 वीं योजना के अन्तर्गत 2558.28 लाख रुपये, वार्षिक योजना (1979-80) के अन्तर्गत 960.15 लाख रुपये, छठी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 1276.07 लाख रुपये 1985-86 में 271.38 लाख रुपये, 1986-87 में 255.72 लाख रुपये तथा 1987-88 में 39.00 लाख रुपये खर्च किये गये। डेयरी विकास के लिए यह विनियोग राज्य योजना, सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम, मरु विकास कार्यक्रम, केन्द्रीय परिवर्तित योजना, विशेष केन्द्रीय सहायता एवं संस्थागत वित्त के माध्यम से किया गया है।

विकास जन्य चुनौतियां

राजस्थान में डेयरी विकास के उपरोक्त इंगित प्रगति के पथ में अनेक बाधाएं आ रही हैं। डेयरी विकास में आने वाली समस्याओं का निकटतम अवलोकन एवं सर्वेक्षण करने पर पाया गया कि राज्य में जल के प्राकृतिक संसाधनों का अभाव

है। कृषि व्यवसाय मूलतः वर्षा पर निर्भर करता है फलतः वर्षा के अभाव में अधिकांशतः अकाल का प्रकोप छाया रहता है। वर्ष 1987 में ही राज्य में भयंकर अकाल के कारण पशुधन को पर्याप्त मात्रा में चारा पानी नहीं मिल सका, अतः काफी संख्या में पशु संहार हुआ है। इन प्राकृतिक विपदा के कारण दूध उत्पादन में चिन्तनीय कमी आई है जिससे उपभोक्ताओं व उत्पादकों को आर्थिक क्षति हुई है।

दूध उत्पादन की एक अन्य व्यवहारिक समस्या दुग्ध की कीमत निर्धारण से संबंधित है। इस मामले में परस्पर अन्तर्गथित दोहरे हितों की टकराहट होती है। दूध उत्पादक दूध का खरीद मूल्य बढ़ाने की निरन्तर मांग करते हैं। डेयरी फैडरेशन उत्पादकों को तुलनात्मक रूप से कम कीमत अदा करती है क्योंकि जिस कीमत से दूध खरीदा जाता है उसी दूध में से वसा, घी इत्यादि गुणात्मक तत्वों को निकालकर वसा रहित दूध को थैलियों में भरकर उपभोक्ताओं को खरीद मूल्य से ज्यादा में बेच दिया जाता है, परिणामस्वरूप उत्पादक डेयरी की इस नीति से संतुष्ट नहीं हैं और अधिकांशतः गांवों में निज़ी दूध डेयरी चल रही हैं जो डेयरी मूल्यों से अधिक मूल्य अदा करती हैं। निजी डेयरी संचालक किसानों से दूध खरीद कर मावा इत्यादि निकाल लेते है या फिर मशीनों से दुग्ध में से वसा निकालकर निकटतम नगरों या शहरों में उसी दूध को डेयरी मूल्य से कम कीमत पर बेच देते हैं। परिणामस्वरूप डेयरी संघ की प्रतिष्ठा एवं क्रय-विक्रय शक्ति को आघात पहुंचता है। राज्य में डेयरी संघ को दुग्ध संकलन करने में यातायात के साधनों, पक्की सड़कों और संचार माध्यम के अभाव का सामना करना पड़ रहा है। ग्रामीण सहकारी समितियों से दूध एकत्रण के समय कई बार संचार माध्यमों में आने वाली बाधाओं के कारण विलम्ब हो जाता है तथा दूध खट्टा होने के कारण आर्थिक क्षति का भी सामना करना पड़ता है।

राज्य में डेयरी कार्यक्रमों में प्रगति का श्रेय संघ में कार्यरत कार्मिकों को जाता है, किन्तु कार्मिकों से साक्षात्कार में यह तथ्य सामने आया कि कर्मचारी वर्ग में असंतोष बढ़ता जा रहा है। कई कार्मिकों ने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है कि संघ में ऐसे अधिकारी थोप दिये जाते हैं जिन्हें डेयरी संघ के क्रियाकलापों तथा नीति संबंधी तथ्यों का ज्ञान नहीं होता। नीतियों से हटकर कार्य करवाये जाते हैं जिसके दुष्परिणाम पर कर्मचारी वर्ग को दोषी ठहराया जाता है। जब तक संबंधित अधिकारी कार्यकरण नीति का ज्ञान पूर्ण रूपेण अर्जित कर पाता है, तब तक उसका प्रतिनियुक्ति काल पूर्ण हो जाता है एवं उसकी जगह नया चेहरा पद पर स्थापित कर दिया जाता है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि डेयरी सहकारी संघ की उपलब्धियों और विकास के कीर्तिमानों को निरन्तर प्रगति की ओर उन्मुख रखने के लिए सरकार एवं संघ संचालकों को इन बाधाओं को दूर करने की दिशा में तीव्र और व्यवहारिक कदम उठाने चाहिये तभी डेयरी विकास के लक्ष्य के अनुरूप राज्य में श्वेत क्रान्ति की गति को बनाये रखा जा सकेगा।

अनुसंधित्सु
लोक प्रशासन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर–302004

सच है कृषक महान

श्रीमती रानी अग्रवाल

खेतों में सपनों के बीज बिछा कर,
श्रम का सौंधा पसीना बहा कर,
ईश्वर का पाता वरदान।
सच है कृषक महान।
धरती को हरियाली चूनर उढ़ाकर,
जन-जन के पालन को अन्न उगाकर,
खाद्य समस्या का करता निदान।
सच है कृषक महान।
निशि दिन लगा है सेवा व्रत लेकर,
पाता सन्तोष है दूसरों को फल देकर,
गुण हैं सन्त समान।
सच है कृषक महान।
भारत का गौरव, गाँवों की आशा,
मेहनत से दूर हो जाती निराशा,
जीवन में नहीं विराम।
सच है कृषक महान।

जैना टाकीज के पीछे
रेलवे रोड,
हापुड़-245101 (उ.प्र.)

ग्रामीण आदिवासी महिलाएं-प्रगति की ओर

श्रीमती मंजू सिंह

आर.एच. लोवी ने ठीक ही कहा, "अन्धविश्वास तथा पुरुष की शारीरिक श्रेष्ठता ने आदिम महिलाओं के मार्ग में कोई ऐसा बड़ा अवरोध उत्पन्न नहीं किया है कि उसकी कमजोर स्थिति के बावजूद अच्छा व्यवहार न किया जा सके और वह पुरुषों के निर्णयों को प्रभावित करने में सक्षम न हो। हां, यह सत्य है कि कथित असभ्यतम जातियों में ही उसे अपने जीवन-साथी के साथ व्यावहारिक समानता प्राप्त होती है।"

आदिवासी महिला का अपने समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना में महत्वपूर्ण स्थान होता है। पूर्वी भारत की गारो और खासी जैसी जनजातियों में उसका प्रभुत्व देखा जा सकता है। पश्चिमी हिमालय की अनेक जनजातियों, विशेषतः किन्नरों और गद्दियों में उसे अनेकानेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। मुड़िया, औरांव और आदि नागा जनजातियों की युवतियां उन्मुक्त जीवन का आन्नद लेती हैं। तो भील महिलाओं को परदा-प्रथा तथा अपनी जनजाति के नैतिक मूल्यों का पालन करना होता है।

परिवर्तन

परिवर्तन प्रकृति और जीवन का शाश्वत नियम है। आदिवासी महिलाओं को भी अपने परिवेशगत परिवर्तनों के अनुसार ढलना होता है। परिवर्तन तेज हो या धीमा, अच्छा हो या बुरा, पूरा हो या अधूरा, पर परिवर्तन तो परिवर्तन है। संस्कृति भी अपरिवर्तनीय नहीं है क्योंकि संस्कृति स्वयं गतिशील है, इसलिए स्त्री या पुरुष किसी का जीवन भी गतिहीन नहीं हो सकता। आज आदिवासी संस्कृति एक संक्रान्ति के दौर से गुजर रही है और यह परिवर्तन संस्करण एवं सर्वांगीकरण के रूप में दिखाई दे रहा है।

यह संरचनात्मक परिवर्तन सामाजिक अन्तक्रियाओं का परिणाम है जिसमें दबाव भी अनुभव किए जाते हैं, लाभ भी उठाये जाते हैं और उत्तदायित्व भी पहचाने जाते हैं। आदिवासी स्त्रियां अधिकाधिक बाह्य लोगों के सम्पर्क में आ रही हैं। वे उनके साथ सरकारी कर्मचारियों के रूप में अथवा स्वयंसेवी रूप में कार्य कर रही हैं। इस अन्तःक्रिया से अन्तःपरिवर्तन होते हैं। अतः आदिवासियों में पारिवारिक जाति, उपजाति तथा सामाजिक संस्थागत संरचनात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं।

आदिवासी स्त्रियों ने शताब्दियों पुराना परिधान बदल लिया है। उन्होंने साड़ी और मिलों का बना कपड़ा पहनना प्रारम्भ कर दिया है। वे अब आधुनिक आभूषण धारण करती हैं और अपने पड़ोसियों की भांति रहती हैं। वे चप्पलें और बूट पसन्द करने लगी हैं।

शिक्षा

आदिवासी स्त्रियों ने पढ़ना-लिखना प्रारम्भ कर दिया है। यद्यपि शिक्षा की गति बहुत धीमी है, तथापि आदिवासियों ने शिक्षा के महत्व को अनुभव कर लिया है। सरकार उनके लिए निःशुल्क शिक्षा की सब सुविधाएं उपलब्ध करा रही है। अब आदिवासी स्त्रियां अध्यापिकाएं, नर्सें, डाक्टर और यहां तक कि राजनीतिज्ञ भी हैं। परन्तु अभी ऐसी स्त्रियों की संख्या उत्साहवर्धक नहीं है।

वस्तुतः कोई भी स्त्री अथवा पुरुष प्रकृति का दत्तक जीव है। इस रूप में वह अपने परिवार पर निर्भर होता है। परन्तु स्त्रियों के जीवन में प्रमुख बल उनके प्राकृतिक परिवेश पर नहीं, बल्कि सांस्कृतिक परिवेश पर होता है। अतः यदि उनका सांस्कृतिक परिवेश परिवर्तित होता है, तो भौतिक परिवेश परिवर्तित करना कठिन नहीं होगा। कोई भी परिवर्तन कभी अन्तिम नहीं होता। यह जीवन की अविरल प्रक्रिया और जीवन का अटूट सत्य है। निश्चित रूप से यह कौन कह सकता है कि आदिवासियों के जीवन में हो रहे परिवर्तन अन्तिम हैं ?

डी–21 पटेल नगर II
गाजियाबाद

श्वेत क्रांति की ओर बढ़ते कदम

कुलदीप शर्मा

एक जमाना था जब भारत में दूध-दही की नदियां बहती थीं। बड़े बूढ़े भी तब बड़ी शान से आशीर्वाद दे दिया करते थे, "दूधो नहाओ, पूतो फलो।" आज भले ही दूध-दही उतनी तादाद में न हो मगर यह नहीं कहा जा सकता कि भारत में दूध-दही की बहुत कमी है। जो भी कुछ कमी है उसे दूर करने के हर संभव उपाय किये जा रहे हैं। 1971 में दूध का उत्पादन 2 करोड़ 25 लाख टन था जो अब बढ़कर 3 करोड़ 83 लाख टन हो गया है। वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार सन् 2000 तक हमारी अनुमानित आवश्यकता 6 करोड़ 40 लाख टन दूध की होगी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमारे देश में दुग्ध उद्योग से संबंधित संस्थाएं कार्यरत हैं। इनमें करनाल का राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड और प्रमुख कृषि विश्वविद्यालय शामिल हैं। हाल ही में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने हिसार में केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान की स्थापना की है जहाँ श्वेत क्रान्ति की द्योतक भैंस पर अनुसंधान कार्य चल रह रहे हैं। इसके अलावा बरेली का भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, मथुरा का बकरी अनुसंधान संस्थान आदि इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड का 'आप्रेशन फ्लड दो' कार्यक्रम भी इस दिशा में महत्पवूर्ण प्रयास है।

हरित क्रांति की तरह श्वेत क्रांति का आवाहन देश में एक महत्वपूर्ण योजना है। इस क्रांति को सफल बनाने के लिए यह जरूरी है कि ऐसे पशु तैयार किये जायें जो स्वस्थ हों और अधिक मात्रा तथा अच्छी गुणवत्ता वाला दूध दे सकें। संकर प्रजनन द्वारा उच्च आनुवांशिकी क्षमता वाले ऐसे पशु प्राप्त किये जा रहे हैं जो काफी मात्रा में दूध देते हैं। श्वेत क्रांति के लिए हमारे देश में विशेष ध्यान भैंस तथा गाय पर दिया जाता है। विशेषकर भैंस इस क्रांति में विशेष सहयोगी सिद्ध होगी चूंकि भैंसों से गायों की अपेक्षा अधिक और ज्यादा चिकनाई वाला दूध मिलता है। यदि भैंसों की अच्छी तरह देखभाल की जाये तो उनसे प्रति ब्यांत 3,500 किलोग्राम तक दूध अधिक लिया जा सकता है। हमारे देश में पशुओं से हर साल लगभग 30 अरब रुपये की आय होती है। यह आय हर खूंटे से बंधी गाय, भैंस का ही सहयोग है।

राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में देसी और विदेशी नस्लों को आपस में मिला कर अधिक दूध देने वाली गाय की नस्लें तैयार की हैं। इनमें एक नस्ल 'कर्ण स्विस' नाम से जानी जाती है। यह नस्ल अपने 305 दिन के ब्यांत काल में 3,269 लीटर दूध देती है और 32 माह की आयु में पहला बच्चा देती है। इस नस्ल को 'साहीबाल' कहते हैं। इसका दुग्ध काफी लोकप्रिय है। यह गाय 8-9 ब्यांतो तक दूध देती है जबकि देसी गाय केवल 4-5 ब्यांत तक दूध देती है। इसी तरह एक और गाय की नस्ल 'कर्ण फ्रीज' तैयार की गयी है। इस नयी नस्ल के गायों के पहले ब्यांत की आयु 13 माह है तथा यह एक ब्यांत में 3,800 लीटर तक दूध देती है। दोनों नस्लों की गाय भारी भरकम शरीर की होती हैं। जहां एक ओर ये अधिक दूध देती हैं तो वहीं दूसरी ओर उनके बैल काफी बलिष्ट होते हैं जो कृषि और भार ढोने के काम में विशेष रूप से मददगार हैं। देश में अधिक दूध देने वाली संकर गायों पर अनुसंधान कार्य जारी है और जल्द ही इसके परिणाम आम जनता तक पहुंचेंगे।

भारतीय कृषि अनुसंधान ने नस्ल सुधार में नया अध्याय जोड़ा है। संस्थान ने परखनली बछिया तैयार कर दिखाई है। गत वर्ष 'लोहड़ी' नाम की पहली विशुद्ध भारतीय बछिया ने जन्म लिया। इस तरह से पशुओं की मनचाही गुणवाली नस्लें तैयार करने का रास्ता खुल गया है।

श्वेत क्रांति में भैंस के सहयोग को नकारा नहीं जा सकता। सच तो यह है कि श्वेत क्रांति भैंस के बल पर ही

संभव होगी। संसार भर की कुल भैंसों की आधी संख्या हमारे देश में है। यहां हर नस्ल की भैंस मिलती है। प्रमुख नस्लों में 'नागपुरी', 'भदावरी', 'महसाना', 'रावी' 'नीली' आदि हैं। देश में 'मुर्रा' भैंसों का तो जवाब नहीं। ये भैंसे प्रति ब्यांत 3,500 किलोग्राम से भी अधिक दूध देती हैं।

गाय और भैंस के अलावा श्वेत क्रांति में बकरी और भेड़ भी महत्वपूर्ण स्तम्भ है। हमारे देश में इन दोनों पर ही अनुसंधान कार्य जारी हैं। कुछ ऐसी नस्ल की संकर बकरी और भेड़ तैयार की गयी हैं जो आम नस्ल से 5 गुना अधिक दूध देती हैं। यह कार्य वैज्ञानिकों द्वारा देसी और विदेशी नस्लों पर अनुसंधान करके किया जा रहा है।

हमारे देश में आज पशुओं में प्रजनन का कार्य नस्ल सुधारने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो चला है। हमारे यहां अधिकांश पशु गांव में पलते हैं। इन पशुओं की उत्पादकता और प्रजनन क्षमता में प्रायः कमी पायी जाती है। क्योंकि इनमें प्रजनन की बहुत-सी समस्याएं होती हैं- जैसे बछिया का देर से गर्भ धारण करना, ब्याने के बाद पशु का देर से गर्मी में आना, दो ब्यांनों के बीच का लम्बा अन्तराल आदि हैं। ये सभी वे समस्याएं हैं जिनका सीधा प्रभाव दूध के उत्पादन पर पड़ता है। वैज्ञानिकों ने इन समस्याओं से निपटने के लिए बहुत से वैज्ञानिक तरीके खोज निकाले हैं जो कृत्रिम रूप से पशुओं में गर्भ धारण कराते हैं और प्रजनन की समस्या से निपटते हैं। इस दिशा में बरेली का भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान विशेष कार्य कर रहा है। यहां प्रजनन से संबंधित पशुओं की हर समस्या पर शोध कार्य किये गये हैं। राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान द्वारा निकाली गयी इन तकनीक से एक लम्बे समय तक अच्छी किस्म की नस्ल में और सुधार किया जा रहा है और इसको दूर-दराज के गांवों तक भी पहुंचाया जा रहा है। इस तरह यह तकनीक गांव-गांव तक इतने सहज रूप में जा पहुंची है कि अच्छी नस्ल चाहने वाले किसान इसे पाने के लिए लालायित रहते हैं। सरकार की ओर से भी यह प्रयास है कि हर गांव में अच्छी नस्ल के और अधिक दूध देने वाले पशु तैयार किये जायें। इसके अलावा हमारे वैज्ञानिक गाँव-गाँव जाकर किसानों को स्वयं ही अच्छी नस्ल तैयार करने की जानकारी देते हैं ताकि कंधे से कंधा मिलाकर श्वेत क्रांति की नींव को पक्का किया जा सके।

सही खुराक

स्वस्थ और अच्छी नस्ल के पशु तैयार करना ही महत्व की बात नहीं है बल्कि उन्हें संतुलित आहार देना भी विशेष महत्व रखता है। पशुओं को जितना अच्छा आहार दिया जायेगा दूध का उत्पादन भी उतना ही अच्छा होगा। राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा अमोनिया उपचारित भूसा तैयार किया गया है जो पोषक तत्वों की दृष्टि से एक संतुलित आहार है। यह भूसा अमोनिया हाइड्रोआक्साइड या अमोनिया से उत्पन्न यूरिया से उपचारित किया जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाये कि पशु को मिलने वाली खुराक में पशु के शारीरिक भार का 25 से 35 प्रतिशत सूखी सामग्री के आधार पर चारा देना चाहिए जिसका आधा भाग हरा हो। इसके अलावा गाभिन पशु के आहार का विशेष ध्यान रखना चाहिए।इनके आहार में फास्फोरस और विटामिन 'ए' की कमी नहीं होनी चाहिए।

उचित आवास

आम इंसान की तरह ही पशुओं को भी साफ सुथरे आवास की आवश्यकता होती है जिससे वे स्वस्थ रह सकें। इसलिए यह जरूरी है कि बदलते मौसम के अनुसार दुधारू पशुओं की देखभाल और उनके रहने-सहने की जगह पर विशेष ध्यान दिया जाये। उनके लिए ऐसे घर बनाये जायें जो उन्हें पूरा आराम दे सकें। यदि घर खुले बनाये जा रहे हों तो इस बात का ध्यान रखा जाये कि ज्यादा पशु होने पर आपस में घिचपिच न हो जाये, इसके लिए काफी खुली जगह होनी चाहिए ताकि पशु आराम से घूम-फिर सकें। छत ढांपने के लिए एसबेस्टस की चादर या छप्पर का प्रयोग किया जाना चाहिए। गर्मियों में गर्मी से और सर्दियों में सर्दी से पशुओं को बचाना जरूरी है। यदि पशु घर में बाँधे जा रहे हों तो उनके स्थान को साफ सुथरा रखा जाना चाहिए। उनकी खाने की नांद और पीने के लिए साफ पानी की व्यवस्था भी बहुत जरूरी है अन्यथा पशुओं में बीमारी फैलते देर नहीं लगेगी। पशुओं को हर समय बांधे हुए नहीं रखना चाहिए उन्हें खुला भी छोड़ देना चाहिए। यदि पशु एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जा रहे हों तो उनके स्थानान्तरण की सुविधाओं का ध्यान रखा जाना चाहिए। हमारे देश में पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए पैदल, ट्रक या रेलों का प्रयोग किया जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाये कि पशुओं को लगातार लम्बी दूरी तय न

कराई जाये इससे उनकी प्रजनन क्षमता और उत्पादन क्षमता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। आमतौर पर गोवंशी पशु पहले दिन 30-40 किलोमीटर की यात्रा कर सकता है और बाद में 15-20 किलोमीटर प्रतिदिन चल सकता है। जबकि भैंसवंशी पशु पहले दिन 20-25 किलोमीटर तथा बाद में 15-20 किलोमीटर ही चलते हैं। गर्भावस्था में यह दूरी और भी कम हो जाती है। यदि पशुओं का स्थानान्तरण किसी वाहन द्वारा किया जा रहा हो तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनमें किसी प्रकार का डर पैदा न हो और उन्हें अधिक झटके न लगें।

सही ढंग से दूध दुहें

गाय-भैंस का दुहना अपने आप में एक कला है जो सीखने से आती है। यदि आपको सही दूध दुहना नहीं आता है तो आप दूध का सही उत्पादन भी नहीं ले सकते हैं। हमारे देश में दूध दोहने की मशीन भी ईजाद हो गई है जो एक बड़े पैमाने पर दूध दोह कर बरतनों को भर देती है। पशुओं से अधिक दूध लेने के लिए उनके पूरे थन को खाली करना जरूरी होता है। यदि थनों को धीरे-धीरे मालिश करके उन्हें ऊपर की ओर खींचा जाये तो बाकी बचा हुआ दूध भी नीचे उतर जायेगा। ध्यान रखें कि थनों में कोई चोट न लगे। कभी-कभी ठंड में तेज हवा के कारण थन सूख कर फट भी जाते हैं, इस दशा में क्रीम या लोशन का प्रयोग करना चाहिए और दुहने से पहले इस क्रीम को साफ भी कर देना चाहिए।

आज हमारे देश में दूध ही नहीं दूध के उत्पादों की भी बहुत जरूरत है। इसके लिए देश में अनुसंधान कार्य जारी हैं। राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा दूध के तरह-तरह के पदार्थ तैयार किये गये हैं जो आम प्रचलित पदार्थों से भिन्न हैं। उदाहरण के तौर पर तैयार किये गये पनीर बनाने में,बचे हुए द्रव्य पदार्थ का प्रयोग पेय जल बनाने के लिये किया गया है। 'एसीडोव्हे' नामक यह पेय पदार्थ काफी स्वादिष्ट है साथ ही स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसके अलावा 'योगाहर्ट', 'श्रीखंड' आदि बहुत से पदार्थ दूध से बनाकर तैयार किये गये हैं जो स्वादिष्ट तो हैं ही साथ ही स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभप्रद हैं।

इसमें दो राय नहीं कि डेरी उद्योग की दिशा में हो रहे हमारे अनुसंधान कार्य अपनी यात्रा तय करके देश में दूध-दही की नदियां बहायेंगे और लोग फिर से फलेंगे-फूलेंगे। असल में डेरी अब एक ऐसा लाभदायक धंधा बन चुका है कि जहां भी सहकारी समितियां बनाई गई हैं वहीं पशुपालक खुशहाल हो रहे हैं। मगर यह भी नहीं भूलना चाहिए कि गाँव से दूध शहरों में पहुंच रहा है। दूध बेचकर गांव के लोग टी.वी., ट्रांजिस्टर, रेडियो, साइकिल और मोटर साइकिलें खरीद रहे हैं और इनके अपने बच्चे दूध को तरस रहे हैं। यही नहीं शहरों में भी शुद्ध दूध के नाम पर पानी की मिलावट घुसपैठ कर रही है। यदि हम दूध का दूध, पानी का पानी करने में सफल हो गये और हर मुंह तक दूध पहुंचा सकें तभी सही अर्थों में हमारे देश में श्वेत क्रांति आ पायेगी।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
602, कृषि अनुसंधान भवन,
पूसा, नई दिल्ली12

खुद का न्याय

पूरन सरमा

छतरपुर नामक गाँव में शिवनाथ नाम का एक गरीब किसान रहता था। शिवनाथ का गांव में छप्पर वाला एक कच्चा घर था और एक एकड़ भूमि का एक छोटा-सा खेत था। शिवनाथ की आजीविका का साधन बस यही खेत था। वैसे शिवनाथ के घर में ज्यादा सदस्य नहीं थे। एक स्वयं वह, उसकी पत्नी सुजाता और दो बच्चे। अपनी कठिन मेहनत के बल पर शिवनाथ अपने परिवार को जैसे तैसे पाल ही लेता था। इस तरह वह अपनी गृहस्थी की गाड़ी चला रहा था। अपनी स्थिति से शिवनाथ कभी दुखी नहीं हुआ। उसने सन्तोष प्राप्त कर लिया था और यही कारण था कि शिवनाथ अपने हाल से खुश था।

दुर्भाग्य से एक वर्ष इतना भीषण अकाल पड़ा कि भूख से आदमी और जानवर कीड़े-मकौड़ों की तरह मरने लगे। इस भूख के शिकार होकर शिवनाथ के जब दोनों बैल भी मर गये तो शिवनाथ बेहद बेचैन और दुखी हो गया। उसकी जीविका का साधन ये दो बैल ही तो थे। उधर खेत भी पानी के अभाव में सूख गये। स्थिति यहां तक आ पहुंची कि शिवनाथ को अपनी गृहस्थी चलाना मुश्किल हो गया और उसने एक दिन छतरपुर गांव को छोड़कर पास ही के शहर में मजदूरी करके पेट पालने की सोची। यह विचार करके शिवनाथ ने कुछ समय के लिए गांव छोड़ दिया और पास के शहर रंगपुर में जाकर बेलदारी का काम करने लगा।

इस काम में शिवनाथ को इतनी आमदनी हो जाती थी कि वह अपने परिवार के लिए रोटी-पानी अच्छी तरह जुटा लेता था। शिवनाथ को और चाहिए भी क्या था, उसने अपनी सांसारिक इच्छाओं को कभी भी नहीं बढ़ने दिया था। इसलिए वह बेलदारी के काम से भी खुशहाल हो गया। इससे हुआ यह कि शिवनाथ तो बस शहर में इसी काम में उलझकर रह गया।

इस कारण शिवनाथ पुनः गांव नहीं लौट पाया। धीरे-धीरे इस तरह पांच वर्ष बीत गये। वैसे इस बीच वह बीच-बीच में अकेला ही जाकर घर और खेत को देख-संभाल आया करता था। परिवार की सही व्यवस्था चलते देखकर शिवनाथ चाहते हुए भी गांव नहीं लौट पाया।

शिवनाथ के खेत के पास ही उसी गांव के एक अन्य किसान हरिराम के भी खेत थे। जब शिवनाथ को गांव से गये काफी वर्ष बीत गए तो हरिराम के मन में बेईमानी आ गयी और उसने पटवारी से मिलकर शिवनाथ के खेत का लगान अपने नाम से भरवा दिया।

उधर शिवनाथ घर-बार संभालता तो रहा था, पर कुछ लापरवाही और कुछ पैसे की तंगी के कारण वह अपने खेत का लगान जमा नहीं करवा पाया। इस तरह लगातार पांच वर्ष तक हरिराम गांव के पटवारी के साथ मिलकर शिवनाथ के खेत का लगान भरता रहा और शिवनाथ को इसकी कानों कान खबर भी नहीं हुई।

छठे वर्ष जब बरसात बढ़िया हो गयी तो हरिराम का मन शिवनाथ के खेत को जोतने के लिए पूरी तरह तैयार हो गया। दरअसल शिवनाथ के खेत को हड़पने की बेईमानी हरिराम के मन में पूरी तरह जम चुकी थी। इसलिए उसने उस वर्ष शिवनाथ का खेत भी बो दिया। शिवनाथ के खेत को बोकर हरिराम का मन पूरी तरह प्रसन्न था और बार-बार उसकी आंखों में शिवनाथ के खेत में बढ़िया फसल लहलहाने के सपने आने लगे।

वैसे अब हरिराम शिवनाथ से पूरी तरह भिड़ने को भी तैयार हो गया था। उसका मन इस बात से आश्वस्त था कि अब सब काम पुख्ता है, इसलिए शिवनाथ का खेत अब उसका ही है। यदि शिवनाथ इसकी शिकायत भी करेगा तो वह

बचाव में अपने सारे कागजात पटवारी की सलाह — सहयोग से पेश कर देगा।

हरिराम द्वारा बोये गये शिवनाथ के खेत में अब अंकुर फूटने लगे थे। इसी बीच शहर में शिवनाथ के मन में यह बात आयी कि अब की बार बरसात अच्छी हुई है, क्यों नहीं अपने हिस्से पर गाँव जाकर खेत को बो दिया जाए। यह सोचकर शिवनाथ छतरपुर आया।

खेत को जुता हुआ देखा तो शिवनाथ का कलेजा बाहर आने को हुआ। वह भागकर पास वाले हरिराम के खेत में गया। उस समय स्वयं हरिराम निराई कर रहा था। शिवनाथ ने कुछ दूर से ही हरिराम को पुकारा — हरिराम, राम.... राम..... कहो ठीक तो है।

हरिराम के हाथ निराई करते-करते रूक गये और वह शिवनाथ को देखकर एक बार तो घबराया किन्तु अपने को संभालकर होंठों पर फीकी हंसी लाकर बोला — आओ शिवनाथ, कहो कब आये। शहर में बाल-बच्चे ठीक हैं न। शिवनाथ ने स्वीकृति में सिर हिलाया और कहा — हां सब ठीक हैं, यह तो बताओ यह खेत जो मेरा है, इसे बो किसने दिया है।

तुम्हारा खेत, तुम्हारा खेत कौन-सा है? यह तो मेरा है और इसे बोया भी मैंने ही है। हरिराम की बात सुनकर तो शिवनाथ का सिर चकरा गया। उसे हरिराम से ऐसी आशा नहीं थी। वह तो उसे एक भला और नेक पड़ौसी मानता आ रहा था। शिवनाथ हरिराम से बोला — कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो हरिराम! खेत तो मेरा ही है। यदि तुमने बो दिया है तो कोई बात नहीं। आखिर हम एक-दूसरे के बरसों से पड़ौसी तो हैं।

सुनो शिवनाथ, खेत उसका जो बोये। पिछले पांच वर्षों से खेत को मैं बो रहा हूं और लगान दे रहा हूं। अब भला खेत तुम्हारा होने का सवाल ही कहां रह जाता है — हरिराम ने दो टूक जवाब देकर कहा। यह सुनकर तो शिवनाथ सुन्न रह गया और वह अपनी लापरवाही पर मन ही मन पछताने लगा।

वह फिर हरिराम से बोला — सुनो हरिराम खेत तुमने बो दिया कोई बात नहीं। तुम्हें आधा धान मुझे देना होगा क्योंकि जमीन मेरी है। अतः फसल के आधे हिस्से में मेरा हक बनता है।

साफ बात सुन लो शिवनाथ। तुम्हारा इस खेत में पांव रखने का भी हक नहीं है। खेत मेरा है और उसमें होने वाली पैदावार पर पूरा हक भी मेरा ही है। अब इसकी शिकायत तुम्हें जहां करनी हो, कर आओ। हरिराम ने गुस्से में यह कहा तो शिवनाथ सोच में पड़ गया। एक बार तो वह गुस्से में भीतर ही भीतर उबल पड़ा और चाहा कि हरिराम को यहीं दबोचकर सबक सिखा दे। पर फिर उसने धैर्य और शांति से ही काम लेने का निश्चय लिया। यह सोचकर वह खेत से लौट आया।

खेत से लौटते हुए शिवनाथ ने सोचा इस बार पटवारी से मिलना ठीक रहेगा। इसलिए वह पटवारी के कार्यालय पर जा पहुंचा। इत्तफाक से पटवारी जी वहीं थे और कागजों में लिखा पढ़ी कर रहे थे। शिवनाथ ने जाते ही कहा — पटवारी जी राम.... राम। चश्मा हटाते हुए पटवारी जी ऊपर की तरफ झांके और बोले — राम.... राम...., भाई, कहो क्या काम है।

साहब मेरे खेत पर हरिराम ने जबरन कब्जा करके उसे बो दिया है और उल्टा कह यह रहा है कि खेत उसी का है। शिवनाथ की बात सुनकर पटवारी की समझ में एक ही पल में सारा किस्सा घूम गया। वह अनजान बनते हुए बोला — कहां है तुम्हारा खेत। शिवनाथ बोला — साहब नदी के किनारे। ठाकुरों के खेतों से कुछ आगे हैं।

रूको देखता हूं। यह कहकर पटवारी कागज का एक मोटा पुलिंदा उठा लाया और उसके पेज पलटने लगा। एक पेज को रोककर बोला — क्या तुम शिवनाथ वल्द श्याम प्रसाद हो।

जी साहब! शिवनाथ बोला। पर भाई तुम्हारे खाते में तो पिछले पांच वर्ष से लगान ही नहीं जमा हुआ है।

साहब, क्या बताऊं, भुखमरी का मारा गांव छोड़कर शहर चला गया। मजबूरी यह रही कि लगान के पैसों की व्यवस्था ही नहीं कर पाया। अब बता दीजिए मैं पूरी कोशिश करूंगा कि वह लगान जल्दी से जल्दी जमा करा दूं। शिवनाथ ने कहा।

अब कैसे हो सकता है। इसका लगान हरिराम वल्द दीना नाथ ने जमा करवाया है और वही उसे जोत भी रहा है। अतः नये कानून के अनुसार खेत का मालिक अब हरिराम ही हो गया है। पटवारी ने रजिस्टर बन्द करके एक ओर फेंका

और पहले वाले काम में आंखें गढ़ा दीं।

साहब, यह तो अन्याय है। खेत मेरा है। उसके पट्टे आदि के सारे कागजात मेरे पास हैं। मेरा पुश्तैनी खेत है यह। इस अन्याय से आप मुझे बचाइये। मेरे बाल-बच्चे भूखे मर जायेंगे। मैंने जान-बूझकर लगान जमा नहीं करवाया बल्कि मेरे साथ यह मजबूरी में हो गया। माई-बाप मुझे बचाओ। शिवनाथ गिड़गिड़ाने लगा।

पटवारी तो हरिराम से घूस खाये बैठा था, अतः सूखा-सा उत्तर देकर बोला — देखो शिवनाथ — हम तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें जो भी इस बारे में करना है आगे जाकर कर लो।

शिवनाथ अपनी बेबसी पर आंसू बहाता चला आया। गांव में भी लोगों से सलाह मशविरा किया। किसी ने उसे थोड़ी दया जताई तो अधिकांश उसे ही आड़े हाथ लेकर दोषी बताने लगे। वैसे हरिराम ने गांव के अधिकांश प्रमुख आदमियों को भी खिला-पिलाकर अपनी तरफ ले लिया था। वह जानता था न्यायालय में मामला चला गया तो उस समय झूठे गवाह झूठ को सच बनाने में पूरी मदद करेंगे। इस तरह निराश शिवनाथ शहर लौट आया।

शहर आकर घर में शिवनाथ ने इस मामले की खबर सुनाई तो परिवार में डर से सबके चेहरे लटक गये। पत्नी खाना न खा सकी और तीनों बच्चे भी सहमकर एक — दूसरे को देखने लगे। यही बात शहर में शिवनाथ ने अपने एक दो हितैशी मित्रों को बताई तो उन्होंने वकील से सलाह करके मामला न्यायालय में दर्ज कराने की सलाह दी।

शिवनाथ न्यायालय में जाने से डर रहा था। वह आजकल के न्यायालय की दशा जानता था। एक तो महंगे वकील फिर बरसों तक न्यायालयों में फैसले नहीं होना, यह दो कारण बरबादी के लिए पर्याप्त होते हैं। यही सोचकर वह मुकदमा करने से डर रहा था। पर अब इसके अलावा रास्ता भी क्या था। सलाह करने के लिए शिवनाथ ने एक वकील से भी राय मांगी तो उसने उसे विश्वास दिलाया कि तुम्हें न्याय मिलेगा और तुम्हें तुम्हारा खेत वापस मिल जायेगा। वकील ने बातों का कुछ पुलमना इस तरह लगाया कि शिवनाथ के मन में आशा की किरणें फूटने लगीं। उसी समय उसने उसी वकील को उसकी फीस की पहली किश्त अदा की और सारे कागज मुकदमें के लिए उस को सौंप दिये। वकील ने सारा केस पढ़-पढ़ाकर मामला मुन्सिफ मजिस्ट्रेट की अदालत में दर्ज कराकर हरिराम के नाम सम्मन जारी करा दिया। हरिराम भी स्थिति से लड़ने को पूरी तरह तैयार था। इस तरह शिवनाथ और हरिराम के बीच मुकदमे बाजी की शुरूआत हो गई।

इधर न्यायालय की स्थिति यह कि हर महीने तारीख बदल दी जाती और सुनवाई किसी की नहीं होती। दोनों के वकील उनसे अपनी-अपनी फीसें ऐंठ लेते और वे अपने घरों को लौट जाते। पैसे की दृष्टि से न तो शिवनाथ इतना सम्पन्न था कि वह इस तरह के बदखर्च बरदाश्त कर लेता और न ही हरिराम इस लायक था।

फिर हरिराम के सामने तो दोहरी परेशानी यह थी कि वह गांव से शहर जाता जिसमें उसका समय और धन दोनों का फिजूल खर्च हो जाता और मतलब कोई हल नहीं हो पाता। आने-जाने का बस किराया, वकीलों की फीस और शहर में चाय-पानी के खर्चे से हरिराम तंग था।

एक ओर हरिराम पैसे से कमजोर होता गया, वहां वह अपने खेतों पर पूरी तरह ध्यान भी नहीं दे पाया। इससे फसलें चौपट होने लगीं। फिर उस वर्ष हुआ यह भी कि बरसात शुरू में तो ठीक हो गई लेकिन बाद में बिल्कुल भी नहीं हो पाई। इससे खेत अपने आप भी सूखने लगे। खेतों पर लागत अलग लगाई जा चुकी थी। बुवाई,बीज और खाद इन सब कामों में हरिराम बहुत पैसा खर्च कर चुका था। खेतों से और आमदनी क्या लागत निकलना भी हरिराम को मुश्किल दीखने लगा।

उधर शिवनाथ भी मुकदमे की नौबत खड़ी करके प्रसन्न नहीं था। वही स्थिति उसके सामने थी जो हरिराम के सामने थी। एक तो मुकदमे की तारीख के दिन उसे अपने काम की छुट्टी करनी पड़ती जिससे मजदूरी में कमी आ जाती। दूसरे वकीलों के खर्चे इतने भारी थे कि वह भीतर ही भीतर बहुत बेचैन था।

कई बार शिवनाथ के सामने यह नौबत आई कि उसे वकील की फीस पत्नी के गहने गिरवी रखकर चुकानी पड़ी। मित्रों से भी उसने ऋण के रूप में काफी रुपया सिर पर कर लिया था। उसकी सही चलती गृहस्थी की गाड़ी एक दम लड़खड़ाने की स्थिति में आ गई थी। वह भीतर ही भीतर पछता रहा था कि उसे मुकदमेबाजी जैसा कदम कम से कम

ऐसी दशा में तो नहीं उठाना चाहिए था जब केवल उसकी मजदूरी से परिवार की रोटी का ही जुगाड़ होता है तो वह मुकदमे के लिए पैसा लाए कहां से।

मतलब यही कि मुकदमे में फंसकर न तो शिवनाथ सुखी था और न हरिराम। सुखी थे तो केवल उन दोनों के वकील। जो केवल तारीखें बदलवा कर दे देते थे और अपनी फीस ले लेते थे। स्वयं वकील ही नहीं चाहते थे कि यह फैसला जल्दी हो क्योंकि जल्दी फैसले के बाद उनकी आमदनी बन्द हो जाती।

शिवनाथ के मन में तो धीरे-धीरे यह बात समाने लगी कि मकदमेबाजी के बजाये या तो जमीन से ही हाथ धो लिया जाये अथवा हरिराम को पंच फैसले के लिए तैयार कर लिया जाये। शिवनाथ को पंच फैसले से यह आशा थी कि गांव के पंच उसके साथ पूरी तरह तो अन्याय नहीं करेंगे, कुछ न कुछ तो दिलवा पायेंगे। कुछ नहीं मिलने से जो कुछ मिल जाये, वही बढ़िया है।

यह सोचकर शिवनाथ एक दिन अपने काम की छुट्टी करके गांव गया और वहां प्रमुख व्यक्तियों से अपने खेत का फैसला करा देने की प्रार्थना करने लगा।

गांव के पंचों ने हरिराम के पास जाकर शिवनाथ के पंच फैसले की बात रखी तो उसे शक हो गया। उसे लगा शिवनाथ आगे से चलकर क्यों आया है अवश्य इसमें गाँव के इन पंचों की चाल है जिसमें फंसाकर वे उसका कोई न कोई नुकसान करना चाहते हैं। हरिराम को लगा शिवनाथ ने अवश्य इन पंचों को कोई रकम खिला-पिला दी है जिससे ये पंच फैसले को तैयार हो गये हैं वरना ये लोग आगे से मेरे पास क्यों आते।

इसका मतलब तो यह हुआ कि खेत हाथ से जायेगा और मुकदमें में खर्च हो गये रुपये वे अलग फिजूल में जायेंगे। यही सोचकर हरिराम ने पंचों से साफ कह दिया — देखिए पंचों! मुझे कोई फ़ैसला यहां नहीं करना। मामला कोर्ट में चल रहा है। उसका फैसला ही मुझे मानना है। आप लोग इसके बीच में मत पड़ो।

पंच भी तो पंचायती करने के मूड में थे बोले — ऐ भाई हरिराम! शिवनाथ भी इसी गांव का है और तू भी यहीं का है। इसलिए यदि शिवनाथ पंच फैसले को तैयार है तो यह बात हमारे कहने पर तुझे भी मान लेनी चाहिए।

नहीं, माफ करो। मैं पंच फैसला नहीं करूंगा। मामला कोर्ट में चल रहा है। वह फैसला कोई गलत थोड़े ही होगा। हरिराम ने पूरी तरह इंकार कर दिया।

लेकिन यह गांव का और पंचों का अपमान है हरिराम। शिवनाथ ने जब हमारी कद्र समझकर काम सौंप है तो तुम्हें भी हम पर विश्वास तो करना चाहिए। पंचों को ताव आ गया था।

मुझे आप लोगों पर पूरा विश्वास है। यह मैंने कब कहा कि आप मेरे साथ न्याय नहीं करेंगे। लेकिन मैंने अभी आप लोगों से न्याय मांगा नहीं है। हरिराम ने दोनों हाथों से मना किया।

समझो हरिराम, शहर जाने-आने में कितना पैसा खर्च होता है। खेतों की सही देखभाल नहीं हो पाती। हम तो तुम्हारे भले की ही कहते हैं कि पंचों के साथ बैठकर न्याय करा ले। फिर तुम यह क्यों मानकर चलते हो कि मामला तुम्हारे खिलाफ ही जाएगा। पंचों ने हरिराम को इस तरह की बातों से समझाना भी चाहा। पर हरिराम तो एक ही रट लगाये था कि उसे कोई पंच फैसला नहीं कराना।

आखिर गांव के पंच यह कहते हुए लौट गये के अब हम कभी नहीं कहेंगे कि तुम फैसला करा लो। उन्होंने हरिराम को यह भी कहा कि आगे उसके स्वयं के कहने पर भी वे लोग तैयार नहीं होंगे। गांव में रहने के लिहाज से उसे गांव के प्रमुखों की बात को माननी चाहिए। यदि वह नहीं मानता है तो आगे से उसे किसी तरह की मदद या सहायता करने में वे लोग पूरी तरह असमर्थ रहेंगे।

हरिराम पर पंचों की इस चेतावनी का तनिक भी असर नहीं हुआ और वह अपने निर्णय पर अड़ा रहा। शिवनाथ भी हारकर निराश होकर शहर लौट गया।

मुकदमे की तारीखें बदस्तूर पहले की तरह जारी रहीं। जैसे-तैसे व्यवस्था करे दोनों इस बोझ को ढोते रहे। दुखी दोनों थे, लेकिन इसे उतार फेंकने की राह नहीं खोज पा रहे थे।

इस तरह जब दो साल बीत गये न्यायालय कोई भी निर्णय नहीं दे रहा था। वे लोग बुरी तरह टूटकर निराश हो गये थे। हरिराम की स्थिति अब शिवनाथ से भी बुरी होती जा रही थी क्योंकि दोनों साल सूखा पड़ गया और खेतों में कुछ भी पैदा नहीं हो सका। किसान की आजीविका तो खेत

ही होते हैं। वही धोखा दे दे तो बस लुटिया डूबी समझो। वैसी ही लुटिया डूबने की स्थिति हरिराम के सामने आ खड़ी हुई थी।

घर में भुखमरी की स्थिति आ खड़ी हुई। बच्चे दीन-हीन होकर भूख से बिलखने लगे। पत्नी भी काफी बीमार हो गई। हरिराम को एक दिन लगा – उसे उसके पापों का फल अब मिलने लगा है।

उसके मन में यह भाव आया कि उसने अपने पड़ौसी शिवनाथ की जमीन हड़प कर उसके और उसके बच्चों के साथ अन्याय किया है। उसी का फल ईश्वर उसे दे रहा है और पता नहीं अभी और कितने दुःख इसके बदले उसे उठाने पड़ेंगे। जो पड़ौसी रोटी की तलाश में घर से निकला था, उस समय मेरा दायित्व एक अच्छे पड़ौसी के नाते यह था कि मैं पीछे से उसके घर और खेत की देखभाल करता। उसे पत्र डालकर विश्वास बंधाता रहता। उल्टा मैंने उसके साथ धोखा किया। पटवारी के साथ मिलकर नये कानून का लाभ लेना चाहा। क्या यह एक पड़ौसी धर्म है। स्थिति यह है कि आज मेरी इतनी दयनीय और बुरी स्थिति हो गई है कि गांव अथवा पड़ौस में मेरी कोई सहायता नहीं करना चाहता। करे भी कैसे मैंने खुले में बेईमानी की है। शिवनाथ की जमीन हड़पी है। लोग मेरी बेईमानी को जान गये हैं, फिर भला वे किसी बेईमान की सहायता क्यों करने लगे।

अपने परिवार की स्थिति देखकर और यह ख्याल आते ही तो हरिराम अपने आप फूट-फूट कर रोने लगा। उसे पछतावा यह भी हुआ कि उसने पंच फैसले का प्रस्ताव भी ठुकरा दिया था। वह अब पंचों के पास भी किस मुंह से जाये। वह स्वयं अपने पापों की पकड़ में आ गया था और पछतावे में आकर रोने लगा था।

एकाएक उसको ख्याल आया कि यदि शहर जाकर सीधे शिवनाथ से मिल लिया जाए तो बुरा क्या है, शिवनाथ से अपने किये की माफी मांग ली जाये। शिवनाथ दिल का इतना बुरा नहीं है। वह जरूर उसे माफ कर देगा। यदि उसने माफ कर दिया तो पापों से भी छुटकारा मिल जायेगा और मुकदमे से भी पिण्ड छूटेगा। हर तरह से विचार करके हरिराम ने सोचा, उसे उसके अलावा कोई रास्ता नजर नहीं आया। उसने शिवनाथ से मिलने का पक्का इरादा किया।

(अगले अंक में समाप्त)

कुरुक्षेत्र का चन्दा

एक प्रति 2 रुपये; वार्षिक 20 रुपये; द्विवार्षिक 36 रुपये; तथा त्रिवार्षिक 48 रुपये मात्र।

छात्रों, अध्यापकों और पुस्तकालयों के लिए चन्दे में 10 प्रतिशत की छूट। इसके लिए प्रमाण-पत्र भेजना आवश्यक है।

कुरुक्षेत्र के नियमित ग्राहकों को प्रकाशन विभाग की 5 रुपये या अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदने पर 10 प्रतिशत छूट दी जाती है।

चन्दे एवं विज्ञापन तथा पत्रिका न मिलने की शिकायत भेजने का पता— व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1, ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467 कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 384888

जैसलमेर मरुस्थल में पशुधन संवर्द्धन हेतु सार्थक अन्वेषण

शम्भूदान रतनू

चान्दन स्थित पशुधन अनुसन्धान केन्द्र में थारपारकर नस्ल की गायों का समूह

सीमान्त जैसलमेर जिला वासियों का मुख्य व्यवसाय पशुपालन है। क्षेत्रफल की विशालता, मामूली वर्षा होने पर चारे की उपलब्धता एवं रेगिस्तानी भू-भाग में पाए जाने वाले 'झाड़ झंखाड़' की प्रचुरता के कारण यहां प्राचीन काल से ही खेती के स्थान पर पशुपालन को प्रधानता प्रदान की गई है।

राजस्थान के विख्यात गौवंशों में थारपारकर वंश की गाय जैसलमेर में पायी जाती है। अपने सफेद रंग, सुन्दर एवं सुडौल शरीर तथा अधिक मात्रा में दूध देने के लिये प्रसिद्ध रही यह नस्ल समय के साथ-साथ अपने मौलिक गुणों को खोती जा रही है। इस वंश के समुचित संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु जिले के चान्दन गांव में सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर के तत्वावधान में स्थापित किये गये पशुधन अनुसंधान केन्द्र के सार्थक अन्वेषण कार्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

पशुधन अनुसन्धान कार्यों के अन्तर्गत वैज्ञानिकों के सतत् प्रयासों के फलस्वरूप वर्ष 1986-87 में एकत्रित अनुसंधान आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि चान्दन केन्द्र पर नस्ल सुधार कार्यों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इस केन्द्र पर पहली बार प्रति वर्ष चार हजार लीटर दूध क्षमता की गाय तैयार की गई है जिसकी अधिकतम दैनिक क्षमता 20 लीटर से अधिक है। इसी प्रकार चान्दन अनुसंधान केन्द्र में प्रथम वर्ष में ही बछड़े का वजन 200 किलो तक बढ़ाये जाने में सफलता हासिल की है जो वैज्ञानिकों के लिये यहां की विषम परिस्थितियों के परिपेक्ष्य में और भी अधिक आश्चर्यजनक है।

इस वर्ष केन्द्र पर गायों का एक 'मदर हर्ड' स्थापित किये जाने की योजना है। इस हर्ड में उत्पादन क्षमता के आधार पर दस सर्वश्रेष्ठ गायों को रखा जायेगा। इन गायों की अधिकतम उत्पादन क्षमता प्राप्त करने हेतु आवश्यक वातावरण उपलब्ध करवाये जायेंगे। उनके लिए आवश्यक विशिष्ठ पशुपालन तकनीक का भी उपयोग किया जायेगा। इस समूह पर तीन बार दूध दुहने की तकनीक अपनाई जायेगी ताकि इनके दुग्ध उत्पादन की क्षमता का अधिकतम उपयोग किया जा सके।

गायों में इ.सी.जी.के उपयोग की तकनीक विकसित कर इसकी विभिन्न शारीरिक अवस्थाओं में सामान्य शारीरिक कार्यवाई का अध्ययन किया जायेगा। पशुओं के हृदय रोगों के अलावा गायों द्वारा सुईयों, कील खा जाने, एनिमिया रक्त रोग, रक्त दर जीवी रोग, लवण असन्तुलन रोगों के निदान में इ.सी.जी. की उपयोगिता का अध्ययन किया जायेगा। अनुसंधान कार्य के अन्तर्गत गाभिन गायों के भ्रूण के स्वास्थ्य की जांच पर भी आंकड़े इकठ्ठे किये जायेंगे।

अनुसंधान केन्द्र में खुजली व अन्य त्वचा रोगों का विस्तृत अध्ययन किये जाने की भी योजना है। इस योजना के अन्तर्गत कवकों द्वारा उत्पन्न रोगों व इसके निदान एवं उपचार के क्षेत्र में अनुसंधान एवं अध्ययन किया जायेगा। वैज्ञानिकों को आशा है कि कवक जन्य त्वचा रोगों के शीघ्र निदान की नई तकनीक विकसित की जा सकेगी। इस तकनीक का मनुष्यों के उपचार में भी उपयोग किया जा सकेगा।

पशु अनुसन्धान केन्द्र में दुधारु पशुओं हेतु बारहों माह हरे चारे की उपलब्धता हेतु इस वर्ष भोजका, भैरवा तथा चान्दन स्थित कृषि फर्मों में जहां पहले नौ हजार क्विन्टल हरा चारा पैदा होता था गत वर्ष बारह हजार क्विन्टल हरा चारा उगाया गया। पशुधन अनुसन्धान केन्द्र की प्रयोगशाला में पशुओं के मूत्र, रक्त आदि के परीक्षण की समुचित व्यवस्था है।

वस्तुत: चान्दन अनुसन्धान केन्द्र पशुधन अनुसंधान केन्द्र कार्यों में लगे पशु वैज्ञानिकों के लिये प्रेरणा स्रोत है। जैसलमेर की विषय भौगोलिक परिस्थितियाँ, निरन्तर अकाल एवं सूखे की स्थिति एवं भीषण गर्मी के उपरान्त भी यहां पशुधन की वंश वृद्धि एवं दुग्ध उत्पादन क्षमता में बढ़ोतरी, यहां कार्यरत वैज्ञानिकों की कर्तव्यपरायणता, कठोर परिश्रम तथा लग्न व निष्ठा का ही परिचायक है।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी
जैसलमेर

पशु-पालन

मोहन चन्द्र मन्टन

युग-युग से पशु भी मानव के
सहचर सहयोगी प्राणी हैं।
बात नहीं कर पाते लेकिन
उनकी भी अपनी वाणी है।

मांग न पाते हमसे वे-कुछ
देते ही रहते आये हैं।
है साक्षी इतिहास हमारा
कितने काम बना पाये हैं।

खेत जोतने, बोझा ढोते
पक्के मित्र किसानों के हैं।
विश्वासी मेहनती पालतू
गाय-बैल इंसानों के हैं।

इनको भी आहार चाहिये
समुचित-पोषक चारा पानी।
शक्ति ऊर्जा उन्हें मिल सके
जीने में हो जो आसानी।

इनका भी पालन पोषण हो
कहीं नहीं इनका शोषन हो।
भूखे रहें न, पले मवेशी,
देखभाल इनकी क्षण-क्षण हो।

देंगे दूध बनेंगी डेरी
माखन की ढेरी की ढेरी।
लोगों तक जो पहुंच सकेंगी,
बाजारों में खूब बिकेंगी।

ए.बी. 904,
सरोजनी नगर
नई दिल्ली-23

आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के लिए भूमि सुधार आवश्यक

ग्रामीण विकास विभाग के तत्वाधान में 19-20 दिसम्बर, 1988 को नई दिल्ली में हुई राज्यों के राजस्व मंत्रियों, सचिवों और अधिकारियों के सम्मेलन में कृषि मंत्री श्री भजन लाल ने भूमि सुधार उपायों को समानता के आधार पर लागू करने पर बल दिया। उन्होंने विभिन्न सुधार उपायों और कानूनों में कमियों को दूर करने के लिए लक्ष्य निर्धारित किए जाने के लिए कहा ताकि समाज के कमजोर वर्गों को इन उपायों के लाभ मिल सकें।

आदिवासी लोगों में असंतोष के प्रति केन्द्र की चिन्ता का उल्लेख करते हुए मंत्री महोदय ने कहा कि आदिवासियों की भूमि उन्हें वापस दिलाने के कार्यक्रम को 20 सूत्री कार्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिये ताकि इसे प्रभावशाली तरीके से लक्ष्य निर्धारित करके लागू किया जा सके। उन्होंने कहा कि केन्द्र सरकार इस विषय में एक विस्तृत समीक्षा कर रही है और इस सम्बन्ध में शीघ्र ही एक नीति की घोषणा की जाएगी।

श्री भजन लाल ने आगे कहा कि अधिकतम सीमा से फालतू भूमि पर, जिसका सरकार द्वारा वितरण किया गया है, भूमिहीनों के कब्जे की पुष्टि की जानी चाहिये। जब कभी असली भूस्वामी को उसकी भूमि से बेदखल कर दिये जाने का मामला ध्यान में लाया जाए तो उसकी भूमि को वापस दिलवाने के लिए ठोस उपाय किये जाने चाहिये और ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत उसे पर्याप्त सहायता दी जानी चाहिये जिससे वह अपनी भूमि का विकास कर सके और उसे उपजाऊ बना सके।

कृषि मंत्री ने राज्यों के राजस्व मंत्रियों का ध्यान ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के कल्याण के लिए राज्य सरकारों द्वारा दी जाने वाली तरजीह की ओर दिलाया और कहा कि भविष्य में 40 प्रतिशत पट्टे महिलाओं को दिये जाने चाहिये। उन्होंने सरकारी और सार्वजनिक भूमियों पर प्रभावशाली लोगों के कब्जे को तेज़ी से खत्म करने और कमजोर वर्गों के लिए चारे और ईंधन की जरूरतों को पूरा करने की आवश्यकता पर भी बल दिया।

केन्द्रीय ग्रामीण विकास राज्य मंत्री श्री जनार्दन पुजारी ने सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए राज्यों से कहा कि वे आठवीं योजना में शामिल किए जाने के लिए एक समयबद्ध गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम तैयार करें। उन्होंने कार्यक्रम की रूपरेखा में सुधार लाने की आवश्यकता पर बल दिया ताकि ये कार्यक्रम गरीबी दूर करने के अपने उद्देश्य में और अधिक सफलता प्राप्त कर सकें और ज्यादा से ज्यादा ग्रामीण लोगों को लाभ पहुंचा सकें।

अधिकतर भूमि सीमा कानूनों को अमल में लाने के बारे में श्री पुजारी ने कहा कि यदि इस कार्यक्रम को प्रभावशाली ढंग से लागू नहीं किया गया तो एक समय ऐसा आ जाएगा जब हमारे पास वितरण के लिए भूमि उपलब्ध नहीं रहेगी। मंत्री महोदय ने कहा कि लाभार्थियों को, उनकी भूमि का उत्पादक प्रयोग करने के लिए उन्हें सहायक सेवाएं और वित्तीय सहायता दी जानी चाहिये।

श्री पुजारी ने कहा कि भूमि सुधार उपायों का मूल्यांकन सही तरीके से नहीं किया गया है और उन्होंने सुझाव दिया कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम की तरह भूमि सुधार कार्यक्रम को

कार्यान्वित किये जाने के लिए सही जानकारी एकत्र करने का प्रबन्ध किया जाना चाहिये।

ग्रामीण विकास राज्यमंत्री ने भूमि रिकार्डों को अद्यतन बनाने की आवश्यकता पर बल दिया क्योंकि ये न केवल भूमि सुधारों को लागू करने के लिए बल्कि योजना बनाने और विकास कार्यक्रमों के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि भूमि रिकार्डों को अद्यतन बनाने, राजस्व प्रशासन को आधुनिक बनाने और नई प्रौद्योगिकी को अपनाने के कार्य को आयोजना कार्य में शामिल किया जाना चाहिये ताकि इस कार्यक्रम के लिए नियमित रूप से धनराशि दी जा सके। उन्होंने कहा कि भूमि और इससे सम्बन्धित मामलों के विवाद बहुत जल्दी तथा लोगों के निवास स्थान के पास ही निपटाये जाएं। इस कार्य के लिए प्रशासन के व्यवहार और संरचना में संशोधन किया जाना चाहिये।

श्री पुजारी ने कहा कि वनों में बसे गांवों में अधिकतर आदिवासी रहते हैं। इन गांवों को अभी तक राजस्व गांवों का दर्जा नहीं दिया गया है। उन्होंने कहा कि इस बारे में हिदायतें जारी कर दी गई हैं, उन पर शीघ्र अमल किया जाना चाहिये और यदि कोई रूकावट आती है तो उसे केन्द्र सरकार के ध्यान में लाया जाना चाहिये।□

प्रस्तुति : मदनमोहन,
वरिष्ठ हिन्दी अनुवादक
ग्रामीण विकास विभाग

"ग्रामीण विकास साहित्य पुरस्कार" योजना

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर श्रेष्ठ मौलिक हिन्दी पुस्तकों के लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार के ग्रामीण विकास विभाग द्वारा ग्रामीण समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर मूल रूप से हिन्दी में पुस्तक लिखने वाले लेखकों के लिए पुरस्कार देने की योजना चल रही है। ग्रामीण विकास के विषयों में, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम, कृषि विपणन तथा ग्रामीण गोदाम, भूमि सुधार, सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम तथा मरुभूमि विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण (ट्राइसेम), ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं तथा बच्चों का विकास और ग्रामीण जल आपूर्ति आदि कार्यक्रमों का समावेश हो सकता है। इस पुरस्कार के लिए लेखकों से उनकी पुस्तकें/पांडुलिपियां 31 मार्च, 1989 तक आमंत्रित की जाती हैं।

पुरस्कार की राशि	**प्रथम पुरस्कार**	**:10,000 रुपये**
	द्वितीय पुरस्कार	**: 7,000 रुपये**
	तृतीय पुरस्कार	**: 5,000 रुपये**

इस पुरस्कार प्रतियोगिता के लिए 1986-87 तथा 1987-88 के दौरान अथवा उसके बाद उपरोक्त विषयों पर लिखित/मुद्रित हिन्दी की मौलिक पुस्तकें/पांडुलिपियां विचारार्थ भेजी जा सकती हैं।

निर्धारित प्रपत्र मंगाने और अन्य जानकारी प्राप्त करने के लिए सचिव, ग्रामीण विकास विभाग, कृषि भवन नई दिल्ली—110001 से सम्पर्क कीजिये। □

ग्रामीण-आर्थिक विकास में 'श्वेत-क्रान्ति' की भूमिका

गणेश कुमार पाठक

हमारा देश कृषि प्रधान देश। इस कृषि के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं-खेती एवं पशुपालन। भारत की अधिकांश जनसंख्या आज भी शाकाहारी है, जिन्हें अधिक पौष्टिक तत्व दुग्ध से ही मिलता है। हमारे देश में पशुओं की संख्या विश्व के किसी भी देश की तुलना में कहीं अधिक है। 1980 की पशु गणना के अनुसार भारत में 1825 लाख गायें एवं 613 लाख भैंसे थीं। किन्तु दुग्ध का कुल उत्पादन 340 लाख टन ही था। एक वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार प्रत्येक भारतीय को प्रतिदिन 280 ग्राम दुग्ध की आवश्यकता पड़ती है जबकि उस समय यह 114 ग्राम ही उपलब्ध था। इससे स्पष्ट है कि भारत में पशुओं की संख्या अधिक एवं दुग्ध का उत्पादन कम है। इसका मुख्य कारण देश की बढ़ती हुई जनसंख्या एवं प्रति पशु दुग्ध का कम उत्पादन है। इस ओर हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का ध्यान गया था एवं उन्होंने जनसंख्या को रोकने के लिए 'परिवार नियोजन' तथा दुग्ध उत्पादन के लिए 'श्वेत-क्रान्ति' कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर चलाने की योजना का शुभारम्भ किया था।

सन् 1965 ई. में देश में 'राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड' (एन.डी.डी.बी) एवं सन् 1970 ई. में भारत सरकार द्वारा 'भारतीय डेयरी निगम' (आई.डी.सी.) की स्थापना की गयी और 13 जनवरी 1970 को ही 'भारतीय डेयरी निगम' के अन्तर्गत 'श्वेत क्रान्ति' का श्रीगणेश हुआ। इन दोनों संस्थाओं का अध्यक्ष 'डा. वर्गीज कुरियन' को बनाया गया। भारत सरकार के स्वप्न को साकार करने के लिए डॉ कुरियन ने संसार की महानतम् 'विश्व खाद्य योजना' को देश में कार्यान्वित किया।

'श्वेत–क्रान्ति' के प्रथम चरण के अन्तर्गत महानगरों की डेयरियों में दुग्ध उत्पादन सन् 1970 में 6.87 लाख लीटर से बढ़कर 1975 ई. में 22.75 लाख लीटर होना निश्चित था, परन्तु यह वृद्धि मात्र 1981 तक 13.41 तक पहुंच पायी।

'आपरेशन फ्लड द्वितीय योजना' के अन्तर्गत 48.5 करोड़ रुपये की लागत से 'विशाल दुग्ध उद्योग परियोजना' प्रारम्भ की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य देश के प्रमुख नगरों में अच्छी गुणवत्ता वाले तरल दुग्ध की आपूर्ति व्यावसायिक रूप से स्वीकृत एवं आर्थिक रूप से स्वावलम्बी त्रिस्तरीय सहकारी ढाँचे के अन्तर्गत व्यवसाय कुशल प्रबन्ध कर्मियों की व्यावसायिक कुशलता का भरपूर उपयोग करते हुए,की जाती है। यह त्रिस्तरीय ढाँचा ग्रामीण स्तरीय 'दुग्ध उत्पादन सहकारी समिति' जनपद स्तरीय दुग्ध ढाँचे में है जो अपने उद्देश्यों के अनुरूप जनपद के दुग्ध उत्पादकों की सेवा में प्रयत्नशील है।

इस परियोजना से एक करोड़ दुग्ध उत्पादक परिवार के माध्यम से 1985 के मध्य तक दुग्ध उद्योग को आत्मनिर्भर करने का लक्ष्य रखा गया था। इस परियोजना के अन्तर्गत एक 'राष्ट्रीय दुग्ध ग्रिड' बनाने का प्रस्ताव है, जो गाँवों की दुग्ध शालाओं को मांग वाले प्रमुख केन्द्रों से जोड़ेगा।

इस समय सार्वजनिक एवं सहकारिता क्षेत्रों में 190 दुग्ध संयंत्र हैं। इनमें से 94 तरल दुग्ध संयंत्र, 30 दुग्ध उत्पाद कारखाने, 66 प्रायोगिक दुग्ध योजनायें एवं ग्रामीण डेयरियाँ हैं। इनकी स्थापित क्षमता 96.78 लाख लीटर, प्रतिदिन की है, परन्तु दुग्ध का औसत उत्पादन मात्र 62 लाख लीटर ही है।

'भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद' के सहायक निदेशक (पशु उत्पादन एवं प्रजनन) डा. ओ.वी. टण्डन के अनुसार 1970-80 के मध्य दुग्ध का कुल उत्पादन 'श्वेत क्रान्ति' के

शेष पृष्ठ 34 पर

8. अतिरिक्त खुराक

मछलियों की एक निश्चित अवधि में उपयुक्त बढ़ोतरी के लिए अतिरिक्त आहार का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए सरसों/मूंगफली की खली तथा चावल की भूसी/पालिश या गेहूं का चोकर आदि का प्रयोग करते हैं। दोनों आहार की बराबर मात्रा लेकर पानी में 3-4 घन्टे तक भीगने देते हैं। उसके बाद हाथ से इसके छोटे-छोटे गोले बनाकर एक निश्चित समय पर सुबह तालाब में अलग-अलग जगहों पर फैंक दिये जाते हैं। सामान्यत: खुराक को मछलियों के कुल भार का दो प्रतिशत के हिसाब से दिया जाता है। ग्रास कार्प के लिए जलीए पौधे (हाइड्रीला, पोटेमोजेटन, स्पाइरोडेला, लेमना व सिरेटोफाइलम) या घास (बरसीम, मक्का के पत्ते) आदि को काटकर तालाब में डाल देते हैं।

9. मछलियों की सेहत व बढ़ोतरी की जांच

प्रत्येक माह सभी प्रकार की कुछ मछलियों को जाल द्वारा पकड़कर उनकी सेहत व बढ़ोतरी की जांच करनी चाहिए। अगर तालाब में किसी प्रकार की कोई बीमारी नजर आये तो उसका उसी समय उपयुक्त इलाज करना चाहिए।

10. मछलियों की निकासी, उत्पादन तथा आय व्यय

तालाब में मत्स्य-बीज संचय करने के लगभग 10-12 माह पश्चात मछलियां बेचने योग्य हो जाती हैं। इन्हें तभी पकड़ना चाहिए जब बाजार में इनकी मांग हो। सर्दी में यह कार्य करने पर अच्छा मूल्य प्राप्त होता है। मत्स्य उत्पादन एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न होता है तथा तालाब की उपजाऊ शक्ति पर निर्भर करता है। एक साधारण मछली-पालक उपरोक्त विधि द्वारा एक हैक्टेयर जल क्षेत्र से प्रति वर्ष लगभग 5000 कि.ग्रा. मछली का उत्पादन कर सकता है तथा इसमें होने वाले सभी खर्चे निकालकर लगभग 15,000 रुपये की आय प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त विधि द्वारा मछली का अधिक उत्पादन करके अपनी तथा देश की आर्थिक व सामाजिक दशा में सुधार ला सकते हैं। हम सभी को इसका महत्व समझना चाहिए तथा जहां तक सम्भव हो इसे अपनाना चाहिए।

कृषि विज्ञान केन्द्र
राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान
करनाल, हरियाणा

पृष्ठ 31 का शेष

अन्तर्गत 30 लाख टन से अधिक नहीं बढ़ सका है, जबकि यह वृद्धि 110 लाख टन होनी चाहिए थी। दुग्ध उत्पादन में वृद्धि की जाने की कमियों पर प्रकाश डालते हुए पंजाब राज्य के अवकाश प्राप्त दुग्ध कमिश्नर श्री जी.बी. सिंह कैरो का कहना है कि देश में 5,76,000 गाँव हैं। इनमें से 4,12,000 गाँव 'श्वेत क्रान्ति' के अन्तर्गत देश के 10 राज्यों में हैं। 10 वर्ष की अवधि में इस योजना के प्रथम चरण में यह मात्र 9,199 गाँवों तक ही सीमित रही अर्थात् केवल 2.21 प्रतिशत तक ही सफलता प्राप्त हो सकी है।

भारत में 'श्वेत क्रान्ति' योजना (1970-1975) लाने का मुख्य उद्देश्य दुग्ध उत्पादन में वृद्धि करना था। इससे पूर्व भी देश में सरकार द्वारा विविध योजनायें, जैसे — एस.एफ.डी.ए., डी.पी.ए.आर. एवं वेस्टर्न घाट्स स्कीम आदि अपनाई जा चुकी हैं।

आज भी सरकार द्वारा दुग्ध उत्पादन बढ़ा कर आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति की योजनायें संचालित की जा रही हैं। चूँकि दुग्ध उत्पादन बढ़ाने का सम्बन्ध केवल पशुओं तक ही सीमित है, अत: उनमें उन्नति के तरीके और खोजें अपनाये जाने चाहिए। विदेशों से अच्छी नस्ल की गायें या भैंसों के आयात द्वारा अथवा संकर विधि से दुग्ध उत्पादन बढ़ाया जा सकता।

इस प्रकार दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होने से न केवल हमें पर्याप्त मात्रा में दुग्ध मिलने से हमारा स्वास्थ्य सुधार होगा बल्कि हमारे आर्थिक ढाँचे में भी मजबूती आयेगी और इस तरह हमारा देश उन्नति की ओर अग्रसर होगा।

प्राध्यापक, भूगोल
महाविद्यालय दुबेछपरा
बलिया (उ.प्र.)
पिनकोड-277205

मधुमक्खी पालन

गंगाशरण सैनी

भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है। इनमें मुख्यतया लघु और सीमान्त स्तर के किसान हैं जिनका मुख्य व्यवसाय खेती करना है। इन किसानों के पास इतनी भूमि नहीं होती कि वे और उनके परिवार के अन्य सदस्य साल भर खेत में काम कर सकें। ऐसे किसानों की आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं होती है। खेती के साथ वे मधुमक्खी पालन को एक सहायक व्यवसाय के रूप में अपनाकर अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं। इससे किसान को शहद और मोम तो उपलब्ध होगा ही इसके अलावा मधुमक्खियां द्वारा परागण से फसल की पैदावार में वृद्धि होगी।

इस धन्धे के लिए अधिक वित्त, श्रम, जन और स्थान की भी जरूरत नहीं होती है। मधुमक्खी पालन को शुरू में छोटे पैमाने पर शुरू करना चाहिए फिर धीरे-धीरे इसे बड़े पैमाने पर किया जा सकता है। मधुमक्खी पालन एक तकनीकी कार्य है अतः प्रत्येक मधुमक्खी पालक को इस उद्योग धन्धे के बारे में निम्न बातों का ज्ञान होना अनिवार्य है:—

जगह का चयन

मधुमक्खी पालन के लिए कैसी जगह हो? एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है। इनके पालने के लिए समतल जगह होनी चाहिए। चुने गये स्थान पर पर्याप्त मात्रा में ताजा पानी, हवा, छाया और धूप होनी चाहिए। मधुमक्खी पालन की जगह के समीप पानी का जमाव, भारी वाहनों के आवागमन के लिए सड़क या घनी आबादी न हो। इसके लिए जगह का चयन करते समय एक बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि मधुमक्खी पालन की जगह के चारों ओर एक से दो किलोमीटर तक पौधे जैसे अमरूद, लीची, सेब, नींबू प्रजाति के पौधे, बेर, नाशपाती, शीशम, यूकिलिप्ट्स, बबूल, नीम आदि हों, इनके अलावा अरहर, तोरिया, सरसों, तारा मीरा, तिल, बरसीम, सूरजमुखी के खेतों के समीप जगह का चयन करना भी उत्तम रहता है। मधुमक्खियों को शहद एकत्रित करने के लिए अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता है। साथ ही वे परागण में भी सहायता प्रदान करती हैं। चिचिण्डा के खेत में भी मधुमक्खी पालन किया जाता है।

देश में लगभग 1/5 भाग में जंगल हैं, जहां पर लगभग 2.5 करोड़ लोग रहते हैं। इन्हें मधुमक्खी पालन उद्योग में आसानी से लगाया जा सकता है। इसमें अधिक लागत नहीं पड़ती और इसे साधारण तबके के लोग भी अपना सकते हैं। दक्षिण भारत में कई जगह खेती के साथ किये गये इस धन्धे में आशातीत लाभ मिला है।

उपयुक्त समय

मधुमक्खी पालन का व्यवसाय अक्तूबर-नवम्बर या फरवरी-मार्च में शुरू करना चाहिए। साधारणतया शरद और वसंत ऋतु में वृक्षों और खेतों की फसलों में बहार आती है। अधिक मधु स्राव होने से मक्खियों में कार्य करने के उत्साह में वृद्धि हो जाती है। इसी मौसम में रानी मक्खी अधिक संख्या में अंडे देती है जिससे सामान्य व्यक्ति काफी अनुभव प्राप्त कर सकता है।

आवश्यक सामग्री

मधुमक्खी पालन को शुरू करने के लिए कई वस्तुओं की आवश्यकता होती है जिनका उल्लेख नीचे किया गया है :

मधुबक्सा, स्टैण्ड, दस्ताने, मुखरक्षक जाली, धुंआ दानी और हाइव टूटा की आवश्यकता होती है। इसके बाद समय-समय पर मोम शीटें, मधुमक्खियों को भोजन देने के लिए आग और शहद निकालने की मशीन आदि की जरूरत पड़ती है।

कौन सी मक्खियां पालें :

मधुमक्खी की मुख्य रूप से चार किस्में हैं जिनका उल्लेख नीचे दिया गया है :–

1. भौंवर (चट्टानी) मधुमक्खी : इसका वैज्ञानिक नाम है 'एपिस डार्सेटा' यह अपना छत्ता रोशनी वाले स्थानों जैसे ऊंचे वृक्षों की टहनियों, चट्टानों और बड़ी-बड़ी इमारतों में बनाती है। छत्ते की लम्बाई, चौड़ाई क्रमशः 1.5-2.1 व 0.6-1.0 मीटर तक होती है। यह बहुत तेज स्वभाव की होती है। छेड़-छाड़ करने पर बहुत दूर तक पीछा करती है। यह शहद अधिक देती है और परागण भी बहुत अच्छी तरह करती है। इसकी आदतों के कारण इसको पालतू बनाने के प्रयास अभी तक सफल नहीं हुए हैं। इसकी एक कालोनी से 36.287 कि. ग्राम प्रतिवर्ष शहद मिल जाता है।

2. छोटी मक्खी : इसका वैज्ञानिक नाम है 'एपिसफ्लोरिया' भौंवर (चट्टानी) मधुमक्खी की भांति यह भी अपना एकल छत्ता रोशनी वाले स्थानों जैसे झाड़ियों, बाड़ों एवं छोटे-छोटे पौधों की टहनियों पर बनाती है। यह भारत के मैदानी भागों में पाई जाती है। इसके छत्तों में से केवल 1/2 किलोग्राम शहद मिलता है। लेकिन यह कृषि फसलों के पर-परागण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसको भी अभी तक पालतू नहीं बनाया जा सका है।

2. भारतीय मधुमक्खी : इसका वैज्ञानिक नाम है 'एपिस इंडिका'। इसे दरूहला, महुन और मौना भी कहते हैं। इसकी आदतें उपरोक्त दोनों मधुमक्खियों से बिल्कुल भिन्न हैं। यह अंधेरे स्थानों जैसे पेड़ और लकड़ी के खोखलों, दीवार और भूमि के अन्दर सात से आठ समानान्तर छत्ते बनाती है। अतएव वैज्ञानिकों ने इसकी आदतों से लाभ उठाकर एक 'मौन पेटिका' बनाकर उसके अन्दर पालना शुरू कर दिया। इसीलिए इसे पालतू मधुमक्खी के नाम से जाना-पहचाना जाता है। पालतू बनाने पर इसका व्यावसायिक महत्व बढ़ गया है। इसीलिए इसे पाला जाता है।

4. यूरोपीय मधुमक्खी : यह मक्खी सारे यूरोप में पायी जाती है। इसकी अनेक जातियां एवं प्रजातियां हैं। इटली की मधुमक्खी-सर्वोत्तम मानी जाती हैं और इन्हें विश्व के लगभग सभी देशों में पाला जाने लगा है। इसे विशेष रूप से अमरीका और कनाडा में पाला जाता है। इस मधुमक्खी की आदतें भारतीय मधुमक्खी से मिलती जुलती है। एक कालोनी से 25 से 181.437 किलोग्राम शहद मिल जाता है।

भौंवर और छोटी मधुमक्खियों में स्थान परिवर्तन की प्रवृत्ति होने के कारण इनका पालन सम्भव नहीं होता। इनके अलावा भारतीय और यूरोपीय मधुमक्खियों को पाला जा सकता है। चूंकि भारतीय मधुमक्खी शहद कम मात्रा में एकत्रित करती है इसीलिए यूरोपीय मधुमक्खी में विशेष रूप से इटालियन जाति (एपिस मैलिफेरा) की मक्खी पालने की सलाह दी जाती है। ये मधुमक्खियां अधिक मात्रा में और बहुत अच्छा शहद एकत्रित करती हैं।

मौन-मण्डल या मधुमक्खी परिवार

मधुमक्खी एक सामाजिक कीट है। यही कारण है कि वह परिवार के रूप में रहती है। इसके परिवार में तीन प्रकार के सदस्य यथा रानी, कमेरी एवं नर मधुमक्खियां होते हैं। मौन मण्डल में एक रानी, 20 से 80 हजार कमेरी मधुमक्खियां और 1-2 हजार नर मधुमक्खियां होती हैं।

रानी मधुमक्खी

यह परिवार की माता होती है। परिवार के सब सद्स्य इसके बच्चे होते हैं। यह सब से बड़ी और लम्बी होती है। एक परिवार में एक ही रानी रह सकती है। रानी के बिना मौन मंडल अर्थहीन है। रानी का काम केवल अण्डे देना है। कमेरी रानी को भोजन कराती है, उसकी देखभाल और सेवा करती है। रानी की राजी खुशी का संदेश अन्य कमेरियों को देती रहती है। कुंवारी रानी केवल गर्भाधान के दिनों में दोपहर के बाद घर के बाहर हवा में उड़ान भरती है। इसके उपरान्त रानी छत्ते में अण्डे देने में व्यस्त हो जाती है। रानी मधुमक्खी की आयु 1-2 वर्ष तक की होती है। जैसे-जैसे उसकी आयु में वृद्धि होती है उसकी अंडे देने की क्षमता में कमी होती है।

कमेरी मधुमक्खी

ये अपूर्ण मादाएं होती है, क्योंकि इसके अण्डाशय विकसित नहीं होती जिसके परिणामस्वरूप वे अण्डे देने के योग्य नहीं होती हैं। लेकिन रानी के अभाव में कुछ कमेरियां अण्डे देने शुरू कर देती है, जिनसे नर मधुमक्खियों का निर्माण होता है। मधुमक्खी परिवार का सारा कार्य कमेरियां

करती हैं। इन कमेरियों का आयु के अनुसार श्रम विभाजन किया जाता है, जोकि एक अनोखी और सुचारू व्यवस्था होती है। 20 दिन वाली कमेरियां घर के अंदरूनी कार्यों जैसे छत्ते और घर की सफाई, बच्चों का पालन पोषण, रानी की देखभाल, घर के छत्तों का निर्माण व मरम्मत और घर का तापमान बनाने आदि में व्यस्त रहती हैं। यह काम उनका अंतिम दिनों तक चलता है। कमेरियों की आयु सक्रिय मौसम में 30 दिन और निष्क्रिय में लगभग 50 दिन की होती है।

नर मधुमक्खी

नर मधुमक्खियों की संख्या बहुत कम होती है। स्वार्मिंग के मौसम में जब नयी रानी बनती है, उस समय नर मधुमक्खी अधिक संख्या में पाली जाती हैं। ये रानी के असेंचित अण्डों से बनती हैं। यह केवल रानी को गर्भाधान करने का कार्य करती हैं। यह सौभाग्य भी हजारों नर मधुमक्खियों में से एक को ही है मिलता है। नर मधुमक्खियां दोपहर बाद सैर-सपाट को निकलती हैं। इन्हें कमेरियां भोजन कराती हैं। रानी के गर्भाधान के बाद नरों का पालन-पोषण कर भगा दिया जाता है।

मधुमक्खियां खरीदना

ग्रामीण क्षेत्रों में मधुमक्खी पालन शुरू करने में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यक्ति कितने फ्रेमों की तैयार कालोनी खरीदें। परीक्षणों से पता चला है कि सामान्य व्यक्ति को कम से कम 4 से 7 फ्रेमों की तैयार कालोनी खरीदनी चाहिए। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि उस समय रानी मधुमक्खी युवा अवस्था में हो। इसके अलावा फ्रेमों में लगे हुए छत्ते के कोषों में पर्याप्त मात्रा में अंडे, झिल्लियां, शहद और पराग हों। जहां तक सम्भव हो नर मक्खियों की संख्या कम होनी चाहिए।

मधुबक्से बदलना

मधुबक्से को स्थानान्तरण करने का कार्य विशेष रूप से रात्रि में करना चाहिए। इसके लिए नीचे का तखता, शिशु कक्ष और अन्दर के ढक्कन को लोहे की पत्तियों द्वारा आपस में जोड़ देते हैं। प्रवेश द्वार पर लोहे की जाली लगा दी जाती है जिससे हवा का आवागमन तो बना रहे परन्तु मधुमक्खियां बाहर न निकल सकें। अब मधुमक्खियों सहित बड़ी सावधानी के साथ एक जगह से दूसरी जगह स्थानान्तरण किया जा सकता है। नये स्थान पर पहुंच कर मधुबक्सों को लगभग 8-10 फीट की दूरी पर और मुंह पूर्व दक्षिण दिशा की ओर रखना चाहिए।

मधुमक्खी पालन प्रबन्ध व्यवस्था

भारत एक ऐसा देश है जहां पर विभिन्न प्रकार की जलवायु और वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। अतएव मौन-प्रबन्ध के लिए एक ही प्रकार की प्रणाली नहीं अपनाई जा सकती लेकिन यहां एक ही जाति की मधुमक्खी पाली जाती है। इसीलिए इनके पालने की विधियों में एक-सी सैद्धांतिक समानता होती है। इसके अलावा मौन पालकों का अपना निजी अनुभव व तरीका भी होता है। फिर भी मौन पालक को आर्थिक दृष्टि से मौन पालन का पूरा लाभ तभी होगा जब उसे मधुमक्खी का व्यवहार, स्वभाव, भोजन और प्रजनन चक्र का पूरा ज्ञान हो, इसलिए मौन पालक के पास मधुमक्खी का समजात (ब्रुड) का मासिक विवरण, इसकी सक्रियता और निष्क्रियता की अवधि पराग व शहद देने वाले फलों की पहचान और उनके फूलने की अवधि का अभिलेख होना जरूरी है जिससे वह मौन प्रबन्ध का वार्षिक कार्यक्रम बना सके।

मौन प्रबन्धक मधुमक्खी की सक्रियता एवं निष्क्रियता पर निर्भर करता है। इस समय मधुमक्खी नये-नये छत्तों को बनाती है और पुराने छत्तों की मरम्मत करती है। मधुमक्खी के विभिन्न जाति के समजातों (ब्रुड) में एकाएक बढ़ोतरी होने के साथ-साथ पराग एवं मधु-भण्डारों में वृद्धि होने लगती है। मौन पालकों को भी चाहिए कि वह भी मधुमक्खी की भांति सतर्क रहे और निम्न नियमों के अनुसार कार्य करे—

ऋतुओं के अनुसार प्रवृत्ति में भी परिवर्तन आता है। विशेष रूप से बसंत ऋतु मधुमक्खियों के लिए सबसे महत्वपूर्ण समय है। इन्हीं दिनों मधुमक्खी अपने वंश को बढ़ाने के लिए सक्रिय रहती है। इसीलिए इन स्वार्मो से नये मण्डल बना सकते हैं। इसी समय मौन मण्डलों की पुरानी रानियों को बदल कर नयी रानी पैदा करवायी जा सकती है। ज्यों ही नयी रानी अण्डे देने शुरू कर दे छत्ते में बने नर कोष्ठों को भी काट कर हटा दे। एक साल से अधिक पुराने छत्तों को हटा दें। इसके बदले फ्रेमों में छत्ता आधार पर लगाकर मधुमक्खी को दे, ताकि इनसे नये छत्ते बन सकें। मार्च से मधु खण्ड में बनाए सुपर फ्रेम लगाकर शिशु खण्ड से ऊपर रख दें ताकि मधुमक्खियाँ इसमें शहद जमा कर सकें।

ग्रीष्म ऋतु में बक्सों को ऐसी जगह रखना चाहिए जहां

शेष पृष्ठ 39 पर

डेयरी सहकारिता और ग्रामीण विकास

डा. एस.एल. मक्कड़
एसोशिएट प्रोफेसर आफ एक्सटेंशन एजुकेशन (इवेलुएशन), पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना (पंजाब)

योजनाबद्ध विकास का प्रमुख उद्देश्य गांवों में बसे लोगों की आर्थिक दशा में सुधार को सुनिश्चित करना है। हमारी अधिकतर ग्रामीण जनसंख्या आजीविका के लिए कृषि संबंधी अन्य व्यवसायों पर निर्भर है। भूमि और कृषि पर से निर्भरता कम करने के लिए अत्यधिक भीड़-भाड़ वाले व्यवसाय में भिन्नता लाना आवश्यक है। इस संदर्भ में हमारे देश में सहकारिता ने पहले हरित क्रांति लाकर और बाद में दूध का उत्पादन बढ़ाकर श्वेत क्रांति द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। डेयरी विकास का ही दूसरा नाम आपरेशन-फ्लड है। अब तक का सबसे बड़ा डेयरी विकास कार्यक्रम 1970 में शुरू किया गया था और यह आपरेशन-फ्लड के नाम से मशहूर हुआ। इसमें संदेह नहीं कि किसी भी देश का पशुधन उसकी खुशहाली का सूचक है। भारत में 1790 लाख गायें और 580 लाख भैंसें हैं। दुनिया के दूध उत्पादक देशों में भारत का पांचवां स्थान है।

प्रभावशाली डेयरी विकास कार्यक्रम ने निस्संदेह हमारे गांवों की आर्थिक दशा में सुधार ला दिया है। बम्बई-दुग्ध योजना के लिए दूध प्राप्त करने के एकाधिकार के विरोध में सन् 1946 में दुग्ध उत्पादन में एक सहकारी आंदोलन शुरू हुआ। उस समय इस तरह की दो संस्थाएं, एक गोपालपुर में और दूसरी मादीपुर में, स्थापित की गईं। भूतपूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने 1964 में गुजरात का दौरा किया और वह दुग्ध सहकारी समितियों की चमत्कारपूर्ण सफलताओं को देखकर विशेषकर अमूल से (आनंद मिल्क यूनियन लिमिटेड), बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने केवल इनकी गतिविधियों का विस्तार करने पर ही जोर नहीं दिया बल्कि दूसरे राज्यों को भी अमूल की तरह की दुग्ध सहकारी समितियां स्थापित करने की सलाह दी। एलेक्स लेडलों के अनुसार, "भारत में अमूल एक अति-आधुनिक और सक्षम सहकारी संस्था है।" समानता का सिद्धांत सहकारिता का मूल दर्शन है और यही सहकारिता का प्रमुख उद्देश्य भी है। ये स्थानीय जरूरतों, साधनों और सामर्थ्य पर आधारित हैं।

इसी तरह आनंद सहकारी समिति का मुख्य उद्देश्य भी उत्पादक को उसकी सक्रिय भागीदारी द्वारा उसे अधिक सक्षम बनाना है। इसलिए इसने एक ऐसा ढांचा अपनाया है जोकि उत्पादक के लिए लाभकारी है। उत्पादक ग्रामीण-स्तर पर सहकारी समितियाँ गठित करते हैं जिनका संचालन चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। ये समितियाँ जिला स्तर पर एक जिला सहकारी संघ बना लेती है। इस संघ के कार्यों का संचालन एक निदेशक मंडल करता है इसी तरह ज़िला स्तर के संघ मिलकर राज्य-स्तर का संघ बना लेते हैं। यह राज्य-स्तरीय संघ दूध को सही ढंग से एकत्रित करने, उसके रख-रखाव और बिक्री के लिए जिम्मेदार होता है।

इन समितियों के सदस्यों को कई सुविधाएं उपलब्ध होती हैं जैसे: संतुलित पशुचारा, कृत्रिम गर्भाधान और पशु चिकित्सा सेवाएं आदि। सहकारिता न केवल प्रभावशाली नेतृत्व और इस क्षेत्र का काम करने व समर्पित कर्मियों को ठीक ही उपलब्ध कराई है बल्कि उत्पादकों के सक्रिय योगदान को भी प्रोत्साहन किया है जिससे इस योजना को सफलता मिली है।

भविष्य में डेयरी उद्योग के विकास के लिए 'अमूल' एक आदर्श है। सरकार ने इसी का अनुसरण करते हुए सन् 1965 में राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड की स्थापना की। इसके बाद भारतीय डेयरी निगम की स्थापना हुई। राष्ट्रीय डेयरी

बोर्ड तकनीकी सलाह और अन्य परामर्शदाई सेवाएं उपलब्ध कराता है। बोर्ड अमूल को आदर्श मानकर डेयरी सहकारी समितियां स्थापित करने में सहायता करता है, अनुसंधान और विकास के कार्य करता है और केन्द्र तथा राज्य सरकारों को डेयरी संयंत्रों के डिज़ाइन तैयार करने और उनके निर्माण संबंधी सलाह देता है। बोर्ड का सबसे बड़ा कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में और ऐसे क्षेत्रों में जहां दूध उत्पादन की काफी सम्भावना थी, आनंद की तरह ही सहकारी समितियों का विस्तार करना था। बाद में इसका कार्यक्षेत्र काफी बढ़ गया और दूध की कमी वाले फालतू क्षेत्रों को भी इसमें शामिल करने के लिए अथक प्रयास किये गए। अमूल ने संकर प्रजनन का कार्यक्रम भी शुरू किया। 'झा समिति ने उत्पादकों की सहकारी समितियां' बनाने के विचार की सराहना की है और उन्हें ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक बदलाव लाने के लिए सबसे उचित बताया है। इसमें मुख्य जोर रोजगार के अधिक से अधिक अवसर जुटाने पर दिया जाता है।

इसमें संदेह नहीं कि आनंद की तरह की सहकारी समितियों से ही यह आशा की जा सकती है कि वे लोकतांत्रिक तरीके की भागीदारी सुनिश्चित कर सकती हैं और आय के स्रोत का विकल्प उपलब्ध करा सकती हैं। फिर भी आलोचकों का कहना है कि संकर प्रजनन द्वारा उत्पादन वृद्धि पर अधिक बल देने से ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक असमानताएं पैदा हो सकती हैं। सम्भवतया ये आलोचक इस बात को नहीं समझ पाए हैं कि इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य बिचौलियों को हटाकर छोटे किसानों को अधिक से अधिक लाभ पहुंचाना है। यह एक संतुलित और विस्तृत कार्यक्रम है और आशा है कि इससे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की योजना तैयार करने और क्रियान्वयन में लगे लोगों को काफी सहायता मिलेगी। इससे ग्रामीण विकास के लिए सही रास्ता अपनाने में भी मदद मिलेगी।

अनुवाद : रक्षा देवी

पृष्ठ 37 का शेष

पर धूप या लू से उनका बचाव हो सके और पास में पानी की भी व्यवस्था करनी चाहिए। वर्षा ऋतु में शहद की कमी होने पर मक्खियों को चीनी की चाशनी पिलानी चाहिए। हेमन्त ऋतु में मक्खियों के बक्से ऐसे स्थान पर रखने चाहिए जहां पर अधिक धूप और मधु प्राप्त हो सके। जनवरी-फरवरी में सरसों में चेपा की रोकथाम के लिए कीटनाशक दवाई का उपयोग किया जाता है। उस समय इनसे मधुमक्खियों को बचाएं।

शत्रुओं से रक्षा

मुख्य रूप से मक्खियों के शत्रु पतंगा, गिरगिट, पक्षी, तिलचट्टा, चूहे, चीटें, चीटियां आदि हैं। इनसे बचाव का सबसे सस्ता एवं सरल उपाय मधुमक्खियों की संख्या में वृद्धि करना है। इससे किसी भी शत्रु का मधुमक्खियों पर आक्रमण करने का साहस नहीं होता। समय-समय पर मधुबक्सों का निरीक्षण और नीचे के तख्ते की सफाई करते रहना चाहिए।

मधु उत्पादन

उपरोक्त वैज्ञानिक विधि को अपनाकर मौन पालन करने से मौन पालक प्रतिवर्ष एक मधुबक्से से लगभग 25 किलोग्राम शहद प्राप्त कर सकता है। इसके अलावा प्रतिवर्ष कालोनियों का विभाजन कर उनकी संख्या दुगनी कर सकता है।

मधुमक्खी पालन के लिए प्रशिक्षण एवं सूचना केन्द्र

कीट विज्ञानाध्यक्ष, भारतीय अनुसंधान संस्थान, नयी दिल्ली–110012

विभागाध्यक्ष कीट विज्ञान, हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार।

विभागाध्यक्ष कीट विज्ञान, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, पंजाब।

कीट विज्ञानाध्यक्ष, कृषि विश्वविद्यालय सोलन, हिमाचल प्रदेश।

केन्द्रीय मधुमक्खी अनुसंधान संस्थान, पूना, महाराष्ट्र।

राजकीय मौन-पालन केन्द्र, ज्योजी कोट जिला नैनीताल, उत्तर प्रदेश।

मधुमक्खी विभाग-अखिल भारतीय खाद और ग्रामोद्योग आयोग, सूचना केन्द्र, चौधरी बिल्डिंग 'के' ब्लाक, कनाट प्लेस, नयी दिल्ली –110001

निदेशक (मधुमक्खी पालन), अखिल भारतीय ग्रामोद्योग आयोग, इली रोड, विले पार्ले (पश्चिम) बम्बई–400056 महाराष्ट्र।

संयुक्त सम्पादक-फसल संदेश
1023 टाइप 4 एन.एच.
फरीदाबाद-121001 हरियाणा

जयसमन्द में मत्स्य पालन एवं आदिवासी

रणछोड़ त्रिपाठी

उदयपुर जिले की दक्षिण पूर्व दिशा में स्थित एशिया की सबसे बड़ी कृत्रिम झील जयसमन्द जो ऐतिहासिक, दर्शनीय एवं पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र तो है ही, अब यह अपने किनारे बसे आदिवासियों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में भी सहायक सिद्ध हो रही है। किनारे के गांवों में रहने वाले आदिवासी लोग कृषि के साथ-साथ इस झील से मछलियां पकड़ कर अच्छा लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

जहां पानी एकत्र होगा वहां मछलियां भी होंगी, फिर जयसमन्द जैसी एक छोटे-मोटे समुद्र जैसी झील, इसमें मछलियों की क्या कमी हो सकती है। यहां मछलियां पकड़ने का काम यों तो वर्षों से होता आया है किन्तु सरकार ने इस कार्य को 1960 से अपने हाथ में ले लिया है। सरकार द्वारा मछली पकड़ने के कार्य को प्रारम्भ के 15 वर्षों तक झील को निजी ठेकेदारों को वार्षिक ठेके पर देकर करवाया जाता रहा है। इससे सरकार को भले ही एक बंधी बंधायी रकम प्राप्त हो जाती थी, किन्तु निजी ठेकेदार अधिकाअधिक लाभ प्राप्त करने के लिए वह आस-पास के आदिवासी मजदूरों से कम मजदूरी पर कार्य करा कर शोषण करते थे। वह यहां की अपेक्षा बाहरी लोगों को बुलाकर मछलियां पकड़ने का कार्य करवाता था, जिससे यहां के मजदूर बेरोजगार हो जाते थे।

राज्य सरकार ने 1976 से इस झील को निजी ठेकेदारों को ठेके पर देना बन्द करके यह कार्य आदिवासियों के विकास हेतु बने जनजाति क्षेत्रीय विकास सहकारी संघ द्वारा करवाना प्रारम्भ किया, तब से अब तक इस संघ द्वारा झील के किनारे के गांवों में रहने वाले आदिवासियों की सहकारी समितियां बनाकर इसके माध्यम से मछली पकड़ने का कार्य करवाया जाने लगा है जिससे इन आदिवासी श्रमिकों को अपने परिश्रम का पूरा पारिश्रमिक मिलने लगा, जो इनके जीवन स्तर सुधारने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

यहां वर्तमान में मछली पकड़ने वाले आदिवासियों की छः सहकारी समितियां बनी हुई हैं जिसमें कुल 623 सदस्य हैं। इसमें से प्रतिदिन 250 से 300 लोग मछली पकड़ने का कार्य करते हैं। इन समितियों में नामला, गांवडी, मेथुडी, सराडी, घाटी एवं बोडला गांव के आदिवासी हैं। ये लोग प्रतिदिन शाम को मछली पकड़ने के लिए नाव व जाल लेकर झील में उतरते हैं एवं झील में जाल डालकर रात भर किनारे पर विश्राम करते हैं एवं प्रातः ही जाल समेट लेते हैं। इसके बाद रात में जाल में पकड़ी गयी मछलियों को नामला ग्राम में बने लाँचिग स्टेशन पर ले आते हैं जहां जनजाति सहकारी संघ का प्रतिनिधि एवं संघ द्वारा नियुक्त ठेकेदार मिलकर मछलियों की श्रेणी के हिसाब से छंटनी करते हैं। मछलियों को तोल कर लाने वाले आदिवासी को निर्धारित दर से पारिश्रमिक दे दिया जाता है। यहां मछली की चार श्रेणीयां निर्धारित हैं जिसके लिए पांच रुपये से दो रुपये प्रति किलो पारिश्रमिक निर्धारित किया गया है। इस प्रकार प्रत्येक मछली पकड़ने वाले आदिवासी को कम से कम बीस व अधिक से अधिक 60 रुपया प्रति दिन पारिश्रमिक प्राप्त हो जाता है। इन मछलियों को बाद में बर्फ की परत के साथ बांस के बड़े-बड़े टोकरों में पैक करके देश के अन्य भागों में भेजा जाता है। यहां प्रतिदिन 5 से 7 क्विंटल मछलियां पकड़ी जाती हैं जिसमें से लगभग 15 प्रतिशत राज्य में व शेष बाहर के राज्यों में भेजी जाती हैं।

जयसमन्द झील में मछलियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि करने के लिए उत्तम जाति की रोहू, मिरगल एवं कतला जाति की मछलियों के विकास पर मत्स्य पालन विभाग द्वारा विशेष ध्यान दिया जाता है। विभाग द्वारा जयसमन्द के पास के पिलादर एवं डींगरी गांव के तालाबों को मत्स्य पालन व विकास हेतु रखा गया है। यहां उत्तम नस्ल की नर व मादा

जयसमंद झील में पाई जाने वाली कतला मछली

मछलियों को जयसमन्द से लाकर छोड़ा जाता है तथा वर्षाकाल में इनके प्रजनन से प्राप्त बच्चों को विकास के लिए पुनः जयसमन्द में छोड़ा जाता है।

मत्स्य पालन विभाग एवं राज्य के जनजाति क्षेत्री विकास सहकारी संघ द्वारा मत्स्य पालन एवं आखेट का का करवाने के लिए नामला गांव में एक मत्स्य पालन प्रशिक्ष केन्द्र भी खोला है जहां विशेषज्ञों द्वारा मछली की किस्मो उनके पालन एवं विकास की जानकारी देने के अलावा मछल पकड़ने का जाल बनाना, जाल को ठीक करना, नाव चलान तथा मछली पकड़ना आदि बातें सिखायी जाती हैं। इसक बाद यहां से प्रशिक्षित आदिवासियों को संघ द्वारा कम ब्याज पर नाव व जाल खरीदने के लिए ऋण भी उपलब्ध कराय जाता है।

निजी ठेकेदारी प्रथा समाप्त होने के बाद से संघ मछली पकड़ने का कार्य अपने हाथ में लेकर स्थानीय आदिवासियों के द्वारा करवाने के बाद से यहां के आदिवास अपने को मिलने वाले पारिश्रमिक से सन्तुष्ट हैं। वे अपन जीवन स्तर ऊंचा उठाने में लगे हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि आज समितियों के सदस्य कई आदिवासियों के पार अपनी कृषि भूमि व पक्के मकान हैं। अधिकांश आदिवासियो के पास मछली पकड़ने के लिए अपनी नाव, जाल हो गये हैं आदिवासी श्रमिकों के पास स्वयं की जमीन हो जाने से समितियों में 623 सदस्य होने के बाद भी प्रतिदिन 250 से 300 लोग मछली पकड़ते हैं, शेष खेती करते हैं। इनमे अदला-बदली चलती रहती है। कभी खेती का कार्य तो कभी मछली पकड़ने का। कुल मिलाकर जयसमन्द के किनारे बसे आदिवासी पहले की अपेक्षा सुखी व संतुष्ट दिखा देते हैं।

सहायक जन सम्पर्क अधिकारी
सलूम्बर-जिला (उदयपुर)
राजस्थान

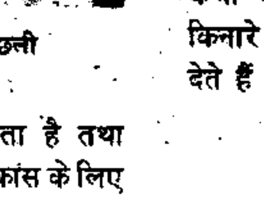

दृढ़ संकल्प के प्रेरक – ओमी अग्रवाल

बी.पी. शर्मा

सुविचारित योजना, दृढ़ संकल्प और संकल्प के प्रति समर्पित भाव से पूर्ण निष्ठा जब मुखरित होती है, तब अलभ्य भी सुलभ और अपराजेय भी पराजेय हो जाता है। छत्तीसगढ़ अंचल के सर्वाधिक पिछड़े आदिवासी बहुल सरगुजा जिले में समय-समय पर सूखे की विभीषिका के ऐसे अनेक कारुणिक प्रसंग उपस्थित हुये हैं, जिन्होंने मानवीय संवेदना को गहरे तक प्रभावित किया है। वनों की आशातीत कटाई के कारणस्वरूप दिनों-दिन जहाँ पर्यावरण सन्तुलन डगमगाता जा रहा है, वहाँ वर्षा न होने से सूखे की भयावह स्थिति भी निर्मित हो रही है।

इसी संवेदना से किसी हद तक प्रेरित होकर सरगुजा की चन्दनवर्णीय माटी के एक अत्यन्त सम्पन्न परिवार में जन्में 38 वर्षीय, विधि स्नातक श्री ओमप्रकाश अग्रवाल उन संकल्प धनी व्यक्तियों में से एक हैं जिन्होंने अपनी लगभग 100 एकड़ पड़त भूमि को स्वप्रेरणा से हरियाली में बदलकर, समाज को, विशेषकर आदिवासी समुदाय को एक नई दिशा दी है। उनकी अवधारणा है कि सरगुजा के आदिवासीजन भी, निजी क्षेत्र में उपलब्ध पड़त भूमि पर वृक्षारोपण करके न केवल पर्यावरण को शुद्ध करके सहायक सिद्ध हो सकते हैं अपितु अपना आर्थिक उत्थान भी कर सकते हैं।

श्री अग्रवाल 1973 में विधि स्नातक होकर वकालत करने लगे परन्तु वकालत का यह पेशा उन्हें रास नहीं आया और वर्ष 75 में उसे तिलांजलि दे दी। विरासत में मिले तेंदूपत्ते के व्यापार से भी उन्हें आत्मसंतोष न मिल सका और वर्ष 1978 से विधि स्नातक युवक कृषि साधना में लीन हो गया। इस दौरान उन्हें सरगुजा केन्द्रीय सहकारी बैंक का उपाध्यक्ष होने के नाते, राष्ट्रीय सहकारी संघ द्वारा आयोजित सहकारिता के अध्ययन के लिए, विदेश यात्राओं में वर्ष 1984 में फ्रॉंस, ब्रिटेन अमेरिका, जापान तथा हांगकांग भेजा गया। श्री अग्रवाल बताते हैं कि उन्हें थाईलैण्ड वासियों में वृक्षों के प्रति अगाध श्रद्धा और गहरी रुचि देखने को मिली।

श्री ओम प्रकाश अग्रवाल ने सरगुजा जिले की लगभग 1,000 हैक्टेयर शासकीय और अशासकीय भूमि पर लगभग 50 लाख पौधों का वृक्षारोपण वन विभाग, ग्रामवासियों तथा युवाओं के सकारात्मक सहयोग से किया। जिले में वृक्षारोपण कार्य को निष्ठापूर्वक सफल बनाने में उन्होंने अन्तर्निहित और समर्पित भावना से जो कार्य किया उससे उन्हें न केवल सुखद अनुभूति ही हुई बल्कि पौधों से उनका तादात्म्य संबंध भी जुड़ गया और अब वृक्ष ही उनकी आत्मा का पर्याय बन चुके हैं।

फलदार वृक्षों में उन्होंने अपने फार्म में 100 कलमी आम, 200 कटहल, 1000 केले तथा 100 वृक्ष लीची, जामुन, नींबू व अमरूद के वृक्षों को रोपित किया है। इस वर्ष के अन्त तक इन वृक्षों की संख्या डेढ़ गुना अधिक करने के लिए श्री अग्रवाल संकल्पित हैं। उन्होंने आधा हैक्टेयर क्षेत्र में टोपियाका पौधा "जैन फूड विटामिन रतलाम" से अनुबंध करके अपने फार्म में लगाया है, जो विटामिन और स्टार्च पर आधारित खाद्य पदार्थों का उत्पादन करती है।

26 जनवरी 87 को माननीय शालेय शिक्षा व युवक कल्याण मंत्री श्री बन्शीलाल धृतलहरे के करकमलों से श्री अग्रवाल को "ज़िला वृक्ष मित्र पुरस्कार" से सम्मानित किया गया। उन्हें जेसीज क्लब अम्बिकापुर द्वारा सरगुजा की जमीन पर प्रति एकड़ 100 क्विंटल आलू पैदा करने के लिए वर्ष 1984 में प्रथम पुरस्कार भी मिल चुका है। श्री अग्रवाल वर्ष 86 में "राष्ट्रीय इंदिरा वृक्ष मित्र पुरस्कार" के प्रतिस्पर्धा दावेदार भी रहें हैं जिसका आयोजन राष्ट्रीय पड़त भूमि विकास निगम द्वारा किया जाता है।

अम्बिकापुर जिला मुख्यालय से 3 कि.मी. दूरस्थ सरगवां स्थित उनका फार्म निकट भविष्य में कृषि स्नातकों व वनस्पति विज्ञान के छात्रों के लिए निश्चय ही निजी क्षेत्र में सरगुजा का एक प्रथम अनुसंधान केन्द्र होगा, जहाँ सेरीकल्चर, हार्टिकल्चर, मत्स्य पालन और डेयरी विज्ञान का अध्ययन एक ही जगह किया जा सकेगा। उनके सरगवां फार्म का विश्व बैंक की टीम 2 बार अवलोकन कर चुकी है साथ ही 2 अमेरिकन वैज्ञानिक भी उनके फार्म को अब देख चुके हैं। वह अपने कार्य में पूरी तरह से समर्पित हैं और अपने राज्य को और भी आगे ले जाने में प्रयत्नशील हैं।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी.
भारत सरकार, बिलासपुर

गोबर ईंधन ही नहीं, ऊर्जा भी

मीता प्रेम शर्मा

गोबर शब्द सुनते ही साधारणतया शहरी लोग, नाक सिकोड़ लेते हैं। परन्तु क्या कभी गौर किया है कि यही गोबर आज के वैज्ञानिक युग में कितना उपयोगी सिद्ध हो सकता है और हो रहा है।

पिछले डेढ़ दशक से ईंधन और ऊर्जा समस्या विश्व के सामने आ खड़ी हुई है और इस समस्या से हमारा भारत भी अछूता नहीं रहा। शहरीकरण, कारखाने, फसल उत्पादन आदि के कारण जंगल लुप्त होते जा रहे हैं। लकड़ी जो कि ईंधन का प्रमुख स्रोत रही है समाप्त होती जा रही है। लकड़ी के कम होने का प्रभाव गोबर पर पड़ा है। गोबर के उपले बनाकर ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। इससे खाद तो नष्ट हो ही रही है साथ ही इसके दुष्परिणाम भी हमारे सामने स्पष्ट हो रहे हैं, जैसे कि घर में उपले जलाने से धूंए का होना और धूए से घर के बालकों विशेषतया स्त्रियों की आँखों का खराब होना, दीवारें काली होना, भोजन बनाने में अधिक समय का लगना आदि।

गोबर व्यर्थ न जाये और सुविधापूर्वक इसका प्रयोग हो सके, इसके लिए वैज्ञानिकों ने अपना पूरा-पूरा ध्यान केन्द्रित कर गोबर गैस संयंत्र तकनीक का विकास किया है। यह गोबर गैस गांवों में बहुत आरामप्रद और लाभप्रद सिद्ध हुई है। जिस गांव में इसका प्रयोग हुआ है वहां के लोगों ने एक बड़ी परेशानी से मुक्ति पाई है।

गोबर गैस के प्रचार और प्रसार के लिए भारत सरकार तथा राज्य सरकारों ने अनेक योजनाएं बनाईं और लागू की हैं। ग्रामीण-जन अब इसके महत्व को पूर्णरूप से स्वीकारते हैं। प्रारम्भ में तो रूढ़िवादिता और अशिक्षा के कारण लोग पीछे ही हटते रहे पर अब उनकी समझ में आ गया है कि गोबर केवल ईंधन ही नहीं, एक ऊर्जा भी है और गैस के रूप में कितना उपयोगी व लाभप्रद है।

गोबर गैस संयंत्र का महत्व

इसके प्रयोग से धुंआ नहीं होता, परिणामत: घर की महिला ने श्वांस और आँख संबंधी बीमारी से मुक्ति पाई है। उपले बनाने में दिन का काफी समय नष्ट हो जाता था। उसी बचे हुए समय में गृहिणी कोई उपयोगी कार्य कर सकती है। जैसे—चटाई, टोकरी बुनना, कढ़ाई, बुनाई आदि। प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र द्वारा लाभ उठाकर शिक्षित हो कर अपने परिवार को सुचारु रूप से चलाने योग्य शिक्षित बन सकती है। बर्तन जो कि चूल्हे पर काले हो जाते हैं और उन्हें साफ करने में काफी समय और मेहनत लगती है, गैस से इस कष्ट से भी छुटकारा मिल जाता है।

गैस के प्रयोग से जगह की बचत और ईंधन एकत्र करने की चिंता से भी मुक्ति मिलती है। घर की दीवारें, दरवाजे एकदम साफ रहते हैं। ध्यान से देखा जाये तो गोबर गैस के प्रयोग से घर-बाहर साफ सुथरे, अच्छा वातावरण, पढ़ाई, लिखाई या किसी कुटीर उद्योग को बढ़ावा मिलना सम्भव हो जाता है।

गांवों में ही गोबर व्यर्थ जाता हो ऐसी बात नहीं है। नगरों में भी गोबर व्यर्थ चला जाता है। अत: गोबर गैस संयंत्र को शहरों में भी बढ़ावा दिया जाये जिससे ईंधन की समस्या कुछ सीमा तक हल हो सके। गोबर गैस बनाने के बाद यूं ही व्यर्थ नहीं चला जाता बल्कि वह एक उपयोगी खाद का रूप धारण कर हमारी भूमि की उपज बढ़ाता है। ईंधन के रूप में लकड़ी का प्रयोग बन्द करने से हम अपनी धरती को बंजर होने से रोक सकेंगे और जगह-जगह रेगिस्तान बनना रुक सकेगा।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि गोबर का उपयोग उचित रूप में करने से वह बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। कई गांवों में इसका प्रयोग हो रहा है पर अभी और भी विस्तार आवश्यक है। हमारा कर्तव्य है कि हम इस ओर अपना पूरा-पूरा ध्यान दें और जनता को इसका लाभ बताएं।

जी-1/ डी
डी.डी.ए.फ्लैट्स
मुनीरका, नई दिल्ली-110067

[Licensed under U (DN)-54 to post without prepayment of NDPSO, New Delhi]

Regd. No. D (DN)/39 Delhi Postal
RN 702/57

31·1·89

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित और